

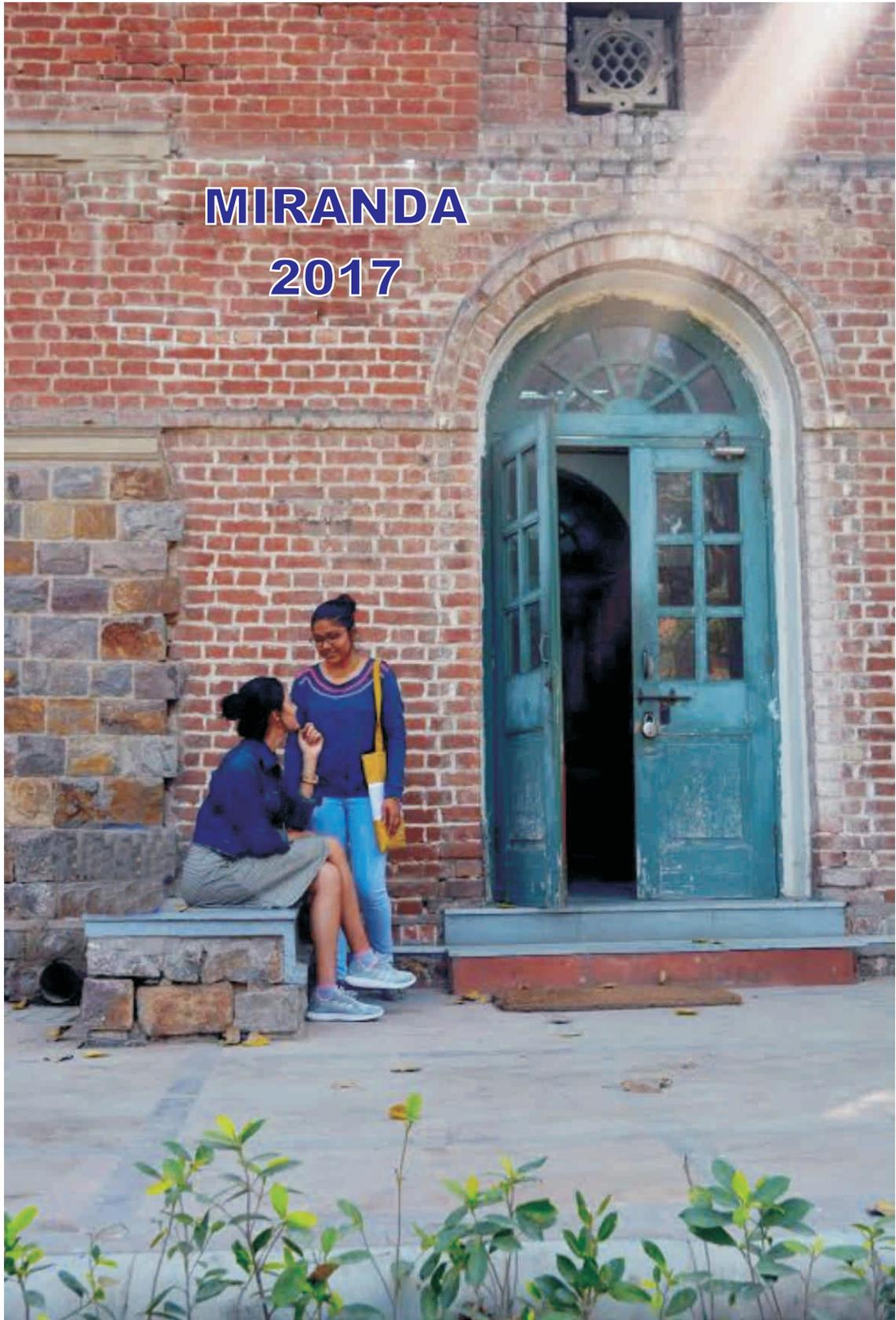
# *MIRANDA 2017*



# North East Fest



**MIRANDA**  
**2017**





# Founder's Day - 2016



# Flowers Show 2017

# Message from the Principal



Eternally young, *Miranda* is the voice of the college that is celebrating this year seven decades of sustained excellence. Released each year on the Founders Day, just before the numerous awards of excellence are given out to students to thundering applause, *Miranda* resonates to the heartbeat of the community, sometimes a gentle whisper, sometimes a resounding crescendo. Indeed, it is a representative sampling that captures the myriad feelings that suffuse our being, the colours that picture our experiences. *Miranda* gives voice to the tangible concerns and a prismatic view of the everyday world. Each element of expression ... word, doodle, art and snapshot ... provides a glimpse into the inner depths and the intangible aspirations of the young students. Reading between the lines, I look forward each year to understanding and learning afresh the multidimensional world *Miranda* mirrors, a world of our dreams crafted from shared experiences.

*Miranda* has always been ingenious and ahead of its times. Long before it became fashionable, *Miranda* engaged with issues of equity, access, diversity, gender, equal opportunity and justice; it broke the barriers of class, creed and clan; it voiced concerns of the dispossessed and those on the periphery; it questioned stereo types, paradigms of development and socio-political praxis; it nurtured sensitivity for planet earth and environment; it created instruments for linking communities in concerted action on societal problems. Representing the demographic profile of the country in all its geographical, cultural and economic diversity, it blurred all binary divides to evolve a uniquely eclectic understanding of social forces. It networked the elite and the commoner with equal ease. With head in the clouds and feet firmly planted on earth, it had the courage to question, both, the conventional and the arcane, explore uncharted territory, spearhead change and venture forth to build a new world order. The inspiring achievements of an inordinately large number of alumnae in highly diverse arenas of work bear testimony to these claims. What underpins the phenomena of passionate engagement with the problems of world and the power to affect change?

In pursuit of its manifold goals, the *Miranda* community has evolved a common mission – to empower the individual and to give to her a mind of her own, a voice of her own, a space of her own, a dream of her own. Transcending all differences, this mission has created a common vocabulary and a common language of expression. *Miranda* has evolved a common sense of purpose, a common belief and value system – and a dynamic repertoire of action tools. This schema is inadvertently passed on from one generation to another. The community fosters a sense of belonging and inheritance. It wields a transformative power over the individual and dares her to dream and act big. It urges her to remain self-reflective, shed complacency and continuously learn. It impels her to remain rooted so that she can weather all storms, grow and achieve. It empowers her to experiment with the cutting edge of contemporary thought, innovate and pioneer. This is the inspiring legend of *Miranda*.

It is my special privilege to dedicate these pages to the community of practice that is *Miranda*.

With warmest best wishes

Pratibha Jolly

# Editorial Board for the College Magazine (2016-17)



## STAFF ADVISORS

### Hindi

Dr. Urmil Singh  
Dr. Nisha Nag

### Sanskrit

Dr. Madhu Bala

### English

Dr. Bharati Jagannathan

## Student Editors:

### Hindi

Niharika Sharma (Hindi Hons., II year)  
Jagriti Upadhyay (Hindi Hons., II year)

### Sanskrit

Prachi Sharma (Sanskrit Hons., III year)  
Priyanka Tyagi (Sanskrit Hons., III year)

### English

Athoibi Ningombam, B.A. (Hons) History, III yr  
Madhulika Chebrol, B.A. (Programme), III yr  
Ramyani Chakrabarti, B.A. (Hons) History, II yr  
Shreya Das, B.A. (Hons) History, II yr  
Soumya Sahai, B.A. (Hons) History, III yr  
Vanya Lochan, B.A. (Hons) History, III yr  
Vidisha Ghosh, B.A. (Hons) History, II yr  
Yutsha Dahal, B.A. (Programme), III yr

## संपादकीय

‘जीवन गतिशील है’ – यह कथन न जाने कब से चला आ रहा है— अपने भीतर जीवन की सत्यता को समेटे हुए। चूँकि गतिशीलता है, इसलिए जीवन है, जीवन में स्पंदन है, स्पंदन है तो भाव हैं और भाव हैं तो संवेदनाएँ हैं। ये संवेदनाएँ ही हैं, जो कि जीवन में हमारे इर्दगिर्द जो कुछ भी घटित हो रहा है, उससे हमें जोड़ती हैं और हमारे अनुभवों का विस्तार करती हैं तथा जीवन को एक सकारात्मक दिशा देती हैं। रचना—संसार के मूल में भी इन्हीं की भूमिका है।

जीवन में आज विश्वव्यापी स्तर पर परिवर्तन हो रहे हैं, जिसके कारण सब कुछ बहुत तेजी से बदल रहा है, जो कि नयी पीढ़ी की सोच को भी बदल रहा है। नई चुनौतियों का सामना करते हुए भी उनमें अभिव्यक्ति की बेचैनी है। उनके भीतर बहुत से प्रश्न हैं, जिनका उत्तर पाने की उनमें तलाश है। इसलिए उनकी सृजनात्मकता का रंग नया है।

वास्तव में यह पत्रिका हमारी वर्तमान छात्राओं का फलक है, जिसे उन्होंने अपनी अनुभूतियों के रंग से रंगा है। इसमें उनकी कोमल अनुभूतियों, बहुरंगी कल्पनाओं एवं उनके सामाजिक सरोकार की झलक है।

प्रस्तुत हैं उनकी नई अनुभूतियाँ .....नए कलेवर में।

संपादन – मंडल (हिन्दी)

डॉ. उर्मिल सिंह

डॉ. निशा नाग

## हमारी नज़र में...

साहित्य समाज का दर्पण माना गया है। साहित्य के माध्यम से हमें समाज की वास्तविकता का पता चलता है। इस वर्ष की पत्रिका के लिए जब हमने लेख, कविता, कहानी के रूप में सामग्री एकत्रित की तो इनके माध्यम से समाज के अनेक पहलुओं से आमना—सामना हुआ। सारे लेख मन को भाने वाले थे पर उनमें से कुछ बस दिल को छू गए, जो इस वर्ष की पत्रिका में प्रकाशित हो रहे हैं। कहते हैं अनुभव से ही मनुष्य सीखता है और इस पत्रिका के लिए काम करते समय जो अनुभव हमें प्राप्त हुए उनसे हमें काफ़ी कुछ सीखने को मिला।

कुछ अनुभव हमें सदैव प्रेरणा देते हैं, जिन्हें हम चंद पक्तियों में बयान कर रहे हैं—

अपनी उलझन में ही अपनी मुश्किलों के हल मिलें,  
जैसे टेढ़ी—मेढ़ी शाखाओं पर भी रसीले फल मिलें,  
उसके खारेपन में कोई तो कशिश होगी ज़रूर,  
वरना क्यूँ सागर से यूँ जाकर गंगा जल मिले।

धन्यवाद!!

निहारिका शर्मा

जागृति उपाध्याय

## सम्पादकीयम्

भारतभूषा संस्कृतभाषा विलसतु हृदये हृदये।  
संस्कृतिरक्षा राष्ट्रसमृद्धिर्भवतु हि भारतदेशे॥

मिराण्डाहाउसमहाविद्यालये प्रतीक्षिता प्रस्तूयमानेयं 'मिराण्डा' नाम पत्रिका सम्प्रति सहृदयानां, विद्यानुरागीणाम्, अध्येतृणाम् च दृष्टिपथमुपायनी क्रियते पुनरेकवारम्। संस्कृतविषये अस्माकं छात्राभिः न केवलं प्राचीनज्ञानविज्ञानमधिकृत्य लेखा लिखिताः अपितु समसामयिकविषयान् यथा आधुनिकयुगे विद्यायाः महत्त्वं, छात्राणां कर्तव्यानि, एतादृशान् विषयान् आश्रित्यापि स्वरचनाः प्रस्तुताः। अस्यां पत्रिकायां विषयाणां वैविध्यं, भावानां गाम्भीर्यं, ज्ञानवर्धनं मनोरञ्जनञ्च विद्यते अस्माकं प्रयत्नः। अतः न केवलं छात्राणामपितु संस्कृतविभागस्य प्राध्यापिकानां स्वरचनाः प्रकाशिताः पत्रिकायाः अस्मिन् अङ्के। छात्राणां कृते एव नैव सामान्यपाठकानां कृते अपि महत्प्रेरणादायिनी इयं पत्रिका। कथितम् केनापि- “ भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा” महत्सौभाग्यमिदं यत् संस्कृतस्य अध्येतारः वयम्॥

सत्यं कथितम्-

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्  
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।  
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोतिकीर्तिं  
किं किं न साधयति कल्पलतेव संस्कृतम्॥

अन्ते इदमुक्त्वा एव विरमामि यत् वर्धतां संस्कृतं सुसमृद्धिञ्च यातु मिराण्डाहाउसमहाविद्यालयस्य संस्कृत-परिषद् चेति।

मधुबाला  
व्याख्यात्री  
संस्कृतविभागः

# Message from the Ed Board

*So bring on the rebels  
The ripples from pebbles  
The painters, and poets, and plays  
And here's to the fools who dream  
Crazy as they may seem*

*-La La Land (2016)*

‘Miranda’, the annual magazine of Miranda House, holds in its pages the dreams, aims, cuts and bruises, smiles and sparkles of every Mirandian. We were quite literally flooded with the submissions, and truly enjoyed going through the creative expressions, and getting a privileged insight into the minds of our community. Even though we could not include everything we received, we could not have been happier to see the quality of the contributions and just how energetic, beautiful and unique the women in Miranda House are!

We realize that we are going through difficult times, and that we will need to keep our spirits high and wills tempered against the coming storm. The Miranda spirit is famous for its unbending and rebellious nature. In this strength there is beauty. In our firmness there is also rectitude, therefore, in our fears, we must also have hope. To our hopeful, idealistic and romantic view of the world, let us add our combined unbending will and maybe, just maybe, find reason in a chaotic world. The voices from Miranda House contained in these pages make it possible for us to dream that we will, despite the immense challenges ahead of us, achieve a better world.

*-Editorial Board*

# हिन्दी

## रचना का नाम

कॉलेज –गीत  
बुलंद हौसला  
कामकाजी नारी—एक आदर्श नारी  
आजादी  
जल है तो कल है  
एक सपना  
बरसात का वो दिन  
जन्म तो लेने दो मुझे  
स्त्री—विमर्श  
कहीं न कहीं  
चौद से इश्क  
समय की कल्पना  
एहसास  
महिला सशक्तिकरण  
नींद  
उस ओर  
सच्चा प्रेम  
मेरे जाने के बाद...  
बदलता समय और महिलाएँ  
एक अनजान रिश्ता  
हर चीज एक जादू है  
दंगल फिल्म—समीक्षा  
चौद का टुकड़ा  
पिता  
कहाँ तो तय था चिरागों  
नशा : नाश की जड़  
माँ  
सफर उन चौदह सालों का  
विज्ञापन की दुनिया और हम  
भाषा और प्रेम  
है ये इश्क मेरा  
पक्षी की पुकार  
आईना बोल उठा  
सड़क के बच्चे  
खोज  
मेरा कैरियर लक्ष्य कल्पना चावला से प्रेरणा  
अपनापन  
रुद्धियों को मश्रविरा  
जहाँ चाह वहाँ राह  
पुर्नजन्म  
पहचान

## संस्कृत

छात्राणां कर्तव्यानि  
उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः  
काकपुराणम्  
पर्यावरणस्य महत्वम्  
स्वच्छभारताभियानम्  
किम् नाम जीवनम्?  
पञ्चदेवाः  
गीतायां विषाद-योगः  
हास्यः कृणिका  
विद्याविहीनः पशुः  
वनमहोत्सवः  
किम् कर्तव्यम्  
उदारम् आचरणम्  
मानम्  
व्यर्थः  
विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्  
शूरा रत्नावली

## लेखक का नाम

डॉ. सुधा कुमार  
श्रेया खनडोला  
ललिता  
शिवांशी तिवारी  
रंजना यादव  
प्रज्ञा  
ऑंचल पाल  
सिमरन  
संध्या वर्मा  
रचना सिंह  
तनुजा राना  
डौली मीना  
कोमल  
अस्मिता पाण्डे  
रश्मि एस. मंडोत्रा  
निधि पटेल  
अंजली दहिया  
अंजना  
पूजा यादव  
निहारिका शर्मा  
मेघा  
अंकिता  
कनिका यादव  
हर्षिता मंगल  
सुधा  
ललिता  
मानसी कपूर  
निहारिका शर्मा  
मीनाक्षी, कीर्ति, दीपा कुलकोरिया  
मानविका चौधरी  
जयनाथर कौशल  
अंजना  
वर्षा  
कोटिल  
कोमल  
अंजू कृष्णियाँ  
दिव्या  
अतीक्षा  
कामिनी सिंह  
ज्योति  
मेघा

## पृष्ठ संख्या

6  
7  
8  
10  
11  
13  
15  
16  
17  
19  
20  
21  
22  
23  
24  
24  
25  
26  
27  
30  
31  
32  
34  
35  
36  
40  
41  
42  
43  
45  
46  
46  
47  
49  
50  
51  
53  
53  
54  
55  
58  
59  
61  
62  
63  
63  
64  
64  
65  
66  
67  
68  
68  
69  
70  
70  
71  
72

# CONTENTS

## ***TALES TALL AND SHORT***

I See You I See Myself	Trisha Jha	73
Boomerang	Archana Anand	75
Lover of A Serial Killer	Vanya Lochan	76
To a Stranger	Vidisha Ghosh	81
The Monster Slayer	Charu Sonal	83
The Beginning of the End	Soumya Sahai	84
A Silver Lining Melody	Asmaani Kumar	88
A Scandalous Affair	Nivedita Rathor	90
Vineeta	Shreyshri Pandey	96
Come Red	Yutsha Dahal	97
My Friend	Ekta Binjola	101

## ***A WORD'S WORTH***

North Campus is a Funny Place	Ambica Naithani	102
1947	Shireen Manocha	104
Sonnet	Karabi Barman	105
The Mountain Beckons	Karabi Barman	106
Cool Water	Ankita Dhar Karmakar	107
Dance of the Seven Seas	Soumya Duggal	108
Dance of the Seven Seas	Nikita Sharma	109
Untitled	Arushi Bhaskar	109
Purple	Kanika Yadav Nuniwal	110
A New Radcliffe across the Oceans	Garima	111
Crows in my Sleep	Nikita Sharma	112
Noises	Nikita Sharma	112

## ***MUSINGS***

New Girl in the City	Oorja Tapan	113
Reflection	Athoibi Ningombam	114
Obedience and Reason	Madhulika Chebrol	115
Why Are College Students Perpetually Broke?	Yusra Hasan	116
Feminism and What Really, Really Begets It	Spandana Durga	118
The Land of Doni and Polo	Shivangini Jha	120
Knock Knock -Anxiety	Shreya Vashishtha	122
Time for Anger	Sanchita Jain	123
Cashless Society- a Utopia?	V. Juhi Sai	124
How Demonetization could've been Better Organised	Rishika Singh	126

## ***MANY COLOURS OF LOVE***

Love Letter to my Beloved	Sumbul Moin	128
I Love You	Shireen Manocha	129
Cobwebs	Prashasti Dwivedi	130
Revenge	Shireen Manocha	131

## ***THIS PLACE WE CALL HOME***

Chasing Homes	Vidisha Ghosh	132
Incident of Intolerance at Miranda House	Yusra Hasan	135
5 Places in Miranda House	Yusra Hasan	136
That You Never Knew Existed!		

## ***INTERVIEW***

A Date with a Writer	Ramyani Chakrabarti & Vidisha Ghosh	139
----------------------	-------------------------------------	-----

## ***INSTAGRAM FEATURE***

Yusra Hasan		141
-------------	--	-----

## कॉलेज—गीत

आज़ाद धरा पर हम जन्मे, हम आज़ादी के दीवाने ।  
आज़ाद हवाओं में उड़ने वाले, हम पंछी मस्ताने ।  
धरती पर पाँव हमारे हैं, सपने आकाश से ऊँचे हैं ।  
पूरब से लेकर पश्चिम तक, हममें से ही कुछ पहुँचे हैं ।  
बेजोड़ हमारी हस्ती है, बेजोड़ हमारी मस्ती है ।  
बेजोड़ हमारे सपने हैं, बेजोड़ हमारे अफ़साने ॥

आज़ाद धरा पर हम जन्मे....

हम नहीं लीक पर चलते हैं, खुद अपनी राह बनाते हैं ।  
हम हरदम आगे रहते हैं, खुद रेले पीछे आते हैं ।  
हम तो राही मतवाले हैं, हम तूफ़ानों के पाले हैं ।  
हम खुद को आप सँभाले हैं, हम बाधाओं से अनजाने ॥

आज़ाद धरा पर हम जन्मे....

उड़ती तिथियाँ, भगते संवत भी हम को रोक नहीं पाए ।  
हम अपनी धुन में लगे हुए, हैं आज यहाँ तक बढ़ आए ।  
हम सिंहवासिनी जैसे हैं, हम हंसवाहिनी जैसे हैं ।  
हम मधुर रागिनी जैसे हैं, निकले हैं जग में छा जाने ॥

आज़ाद धरा पर हम जन्मे....

हो कला क्षेत्र या फ़िल्म जगत, हर ओर हमारे चर्चे हैं ।  
इतनी बुलंदियाँ छूने को कितने दिन हमने खर्चे हैं ।  
है नाज़ हमें अपने ऊपर, अपनी अनमोल विरासत पर ।  
है नाज़ मिरांडा हाउस पर, इस बात को सारा जग जाने ॥

आज़ाद धरा पर हम जन्मे....



शब्द एवं संगीत: डॉ. सुधा कुमार  
(भूतपूर्व सदस्या, हिन्दी विभाग)

## बुलंद हौसला

हौसला ऐसा हो  
कोई हिला न सके,  
व्यक्तित्व ऐसा हो  
कोई मिटा न सके,  
और फितूर ऐसा हो  
कोई गुमराह न कर सके।  
जुनून ऐसा हो  
की बंजर ज़मीन पर भी फूल खिलें,  
निगाहें ऐसी हों  
कि लक्ष्य के सिवाय कुछ न दिखे,  
जीत चखने के लिए  
हार से मुख़ातिब होना पड़ेगा,  
अपने आप से नहीं  
अपनी गलतियों से नदारद होना पड़ेगा।  
मेहनत का कोई विकल्प नहीं  
संघर्ष से कोई बचाव नहीं,  
ये सब तो ज़िदगी का हिस्सा है  
जीवन का हर मोड़ एक जैसा नहीं।  
आवेश हो तो ऐसा  
नीर में भी आग लगा दे,  
और अस्तित्व हो तो ऐसा  
कि वक्त भी न भुला सके।



श्रेया खनडोला  
बी. ए. प्रोग्राम (प्रथम वर्ष)

## कामकाजी नारी—एक आदर्श नारी

आज के युग में नारी का प्रवेश और प्रभाव हर क्षेत्र में है। उसे किसी छोटी परिधि में सीमित नहीं किया जा सकता क्योंकि चाहे घर हो या बाहर, अपनी अनगिनत क्षमताओं का परिचय देकर ही आज नारी ने अपनी बुद्धि मत्ता, पहचान, योग्यताओं, सृजनशीलता, कार्यों, आत्मविश्वास तथा कामयाबी का परचम पूरे विश्व भर में लहराया है। नारी का अनुदान कभी भी हल्का स्तर का नहीं रहा बल्कि उसने धरित्री की, ऊर्जा तथा प्राणवायु के सदृश अपनी विभूति वर्षा से संसार के कण-कण को सरस, सुंदर तथा समुन्नत बनाया है। करुणा, दया, सेवा, उसका समर्पण और उसकी अनुकंपा ही है, जो इस संसार को सुरम्य और सुसंस्कृत रख रह पा रही है।

आज की प्रगति का यदि कोई जीता-जागता उदाहरण है, तो वह है एक शिक्षित नारी। समुन्नत देशों में नारी का प्रवेश और प्रभाव उन सभी क्षेत्रों में है, जिनमें की पुरुष अपने पुरुषार्थ का परिचय देते रहे हैं। आज की महिलाएँ अपने कामकाज के प्रति इतनी सजग हो गई हैं कि वे राजनीतिक, वैज्ञानिक तथा आर्थिक क्षेत्र में भी क्रांतिकारी कार्य कर रही हैं। समाजसेवा के क्षेत्र में भी मुक्त कंठ से प्रशंसा करने में कोई संदेह ही नहीं।

यह 'कर्मयुग' है और इसमें नारियाँ अर्थोपार्जन करती हैं, तो देश की अर्थव्यवस्था तरक्की के नए आयामों को छूती है क्योंकि अगर 1000 पुरुषों ने ही सिर्फ धनोपार्जन किया तो देश की आमदनी आधी होगी और साथ में 1000 स्त्रियों ने भी धनोपार्जन किया तो देश की आय स्वतः दुगुनी हो जाएगी। इस तरह प्रकृति प्रदत्त क्षमताओं का प्रयोग कर स्त्रियाँ राष्ट्र की चहुँमुखी प्रगति में अपना अमूल्य योगदान देती हैं।

यह बात लिखते हुए मैं काफी गौरवानुभव कर रही हूँ कि आज की स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही कंधे से कंधा मिलाकर अपने उत्तरदायित्व और कर्तव्यों का पालन पूरी ईमानदारी से कर रही हैं।

अध्यापिका के तौर पर बच्चों का शिक्षित करने का कार्य, डॉक्टर के तौर पर व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा कर तथा एक वैज्ञानिक के रूप में नारी का आविष्कारों की ओर बढ़ता चरण। यह सब किसके द्वारा संभव हुआ? महिलाओं के द्वारा, उनके कार्यों के द्वारा तथा उनके विवेक के द्वारा।

आज की नारी के विषय में कहा जा सकता है—

“पाषाणों से भी कठोर वह,  
वह है कोमल फूलों सी।  
नारी का हर रूप मनोहर  
अनुकरणीया वह देवों सी।।”

इसके साथ ही, बाहर के वातावरण के साथ समायोजन बिठाना तथा घर के वातावरण के साथ समायोजन बिठाना, किसी बड़ी परीक्षा से कम है क्या? हरगिज़ नहीं। लेकिन फिर भी वह अपने घर तथा परिवार को बेहतर बनाने के लिए कठोर परिश्रम करती है और परिवार का स्तर ऊँचा उठाती है। वास्तव में, कामकाजी स्त्रियाँ ही आदर्श स्त्रियों की परिचायक हैं।

भारतीय संस्कृति में देवी के आठ हाथ इस बात को बखूबी इंगित करते हैं कि स्त्रियाँ 'शक्ति' का प्रतीक हैं। हमारी माँ, इस बात का जीता-जागता प्रमाण हैं, जो एक ही पल में दस-दस कार्य करने में सक्षम हैं। वह एक

ही समय में घर की सफाई भी करती हैं, भोजन भी तैयार करती हैं। बच्चों का ख्याल भी रखती हैं, नौकरी भी करती हैं और पूरी गृहस्थी के साथ-साथ, सामाजिक उत्सवों और रीतियों में भी अपना पूरा योगदान देती हैं। यह एक विचित्र शक्ति होती है। जिसके वशीभूत होकर स्त्रियाँ अनगिनत कार्य करने से हरगिज़ चूकती नहीं। पुरुषों के लिए यह बड़ी हैरानी की बात है कि कैसे स्त्रियाँ घर की व्यवस्था बखूबी कर अपनी संतान का समुचित पालन-पोषण तथा सही दिशा-निर्देशन कर अपने परिवार जनों की सभी ज़रूरतों का ख्याल रखकर बाहर के प्रतिस्पर्धात्मक माहौल में भी अपनी क्षमताओं का और अपनी योग्यताओं का लोहा पूरे विश्व भर में मनवाती हैं।

माग्रेट थैचर हो, इंदिरा गांधी हो या श्रीमती भंडारनायके—इन्होंने राजनीति के क्षेत्र में अपनी विलक्षण क्षमता दिखलाई। बचेंद्री पाल ने एवरेस्ट की चोटी पर चढ़कर, आरती साहा ने इंगलिश चैनल पार कर, कल्पना चावला और सुनीता विलियम्स ने अंतरिक्ष की गहनता को पार कर तथा वहीं दूसरी ओर कुश्ती के क्षेत्र में मर्दों को पछाड़ती हुई महिला पहलवान, गीता और बबीता को कौन नहीं जानता? जिन्होंने कुश्ती के क्षेत्र में अपना सिक्का इस कदर जमाया कि उनके ऊपर 'दंगल' जैसी सुपरहिट फिल्म भी बन गई और गीता और बबीता दोनों बहनों ने खुलेआम यह घोषणा कर दी कि बौद्धिक क्षमता के साथ-साथ शारीरिक क्षमता में भी हम किसी से कम नहीं।

उदाहरण गिनवाने लग जाऊँ तो महिलाओं की उपलब्धियों की कोई सीमा ही नहीं, पर इतना अवश्य लिखना चाहूँगी कि बुलंदी के नए कीर्तिमानों को रचने के बावजूद भी स्त्रियाँ अपने महत्तम दायित्वों को कभी नहीं भूलतीं और वह दायित्व है—

एक स्वस्थ समाज के निर्माण का, एक स्वस्थ संतान को जन्म देकर भावी पीढ़ी को मजबूत बनाने का। सच ही कहा है महाकवि 'सुमित्रानन्दन पंत' ने—

“एक नहीं, दो-दो मात्राएँ  
नर से नारी भारी।।

अतः यह कहा जा सकता है कि कामकाजी नारियाँ ही आदर्श नारियों की परिचायिका हैं। और इसके साथ ही वर्तमान के प्रतिस्पर्धात्मक माहौल में कार्यरत महिलाओं के प्रति मैं अपना हार्दिक अभिनन्दन प्रस्तुत करते हुए अंततः यह लिखना चाहूँगी कि—

“हम नारियाँ, किसी से, हैं कम कहीं नहीं,  
हर क्षेत्र में दिखा दम, साबित किया यहीं।  
घर के हो कर्म चाहे, बाहर को ही सही,  
आदर्श राह को हम, तजती कभी नहीं।।”

ललिता  
हिंदी विशेष (द्वितीय वर्ष)

## आज़ादी

खुले आसमान के पक्षी, आज बन्दिशों में पड़े।  
पंख फैलाकर उड़ना चाहें, मगर कोई आज़ाद तो करे।  
पहुँचना है ऊँचाईयों पर,  
सारे बन्धन तोड़कर।  
जानना है रहस्यों को,  
सारे तथ्य जोड़कर।  
पहुँचना है उस लक्ष्य पर  
मगर कठिन है राह।  
कोई तो आज़ाद करे,  
और नहीं कोई चाह।।



## आज का सच

स्वार्थ सिन्धु की आँधी में, मानवता लाचार खड़ी  
निजता की कूट भावना में, पर उपकार को जगह नहीं।  
हर तन और मन में, बस लालच की छाया।  
मोह—माया की इस दुनियाँ को कोई समझ न पाया।  
ज्ञान, अहं के बीच में खड़े रहे बेचारे,  
असत्य, बुराई की विजय से भौचक्के हैं सारे।  
इस विस्तृत संसार को कोई जान न पाया,  
ब्रह्म—ज्ञान का जटिल पाठ कभी समझ न आया।  
अनजान हैं हम सब, निःस्तब्ध खड़े हैं सारे,  
कोई तो आकर परमज्ञान से हम सबको उबारे।।

शिवांशी तिवारी  
हिन्दी विशेष (द्वितीय वर्ष)

## जल है तो कल है

**सीमित जल और समाज**— भारत के पास राष्ट्रीय स्तर पर 91 बड़ी झीलें और तालाब हैं, जो बिजली, पीने के पानी और सिंचाई के मकसद से तैयार हैं। इसके बावजूद भी बड़े स्तर पर पानी की कमी हुई है। हमारे देश में विश्व की आबादी की 16 प्रतिशत जनसंख्या है, जबकि विश्व में कुल पानी का चार प्रतिशत ही हमारे पास है।

मैकिन्से कन्सल्टिंग के वॉटर रिसोर्सज ग्रुप के मुताबिक साल 2030 तक भारत दुनिया के उन देशों में से एक होगा, जहाँ कृषि क्षेत्र में पानी की माँग सबसे अधिक होगी। अनुमान के मुताबिक साल 2030 में यह 1,195 अरब क्यूबिक मीटर जल का दोहन करेगा और इसके लिए उसे अपने मौजूदा उपयोग लायक जल की मात्रा को दोगुना करना होगा।

मराठवाड़ा के कई क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ थोड़ी-थोड़ी दूरी पर महिलाएँ धातु के औजारों की मदद से कमर की लम्बाई तक खुदाई करती दिखती हैं। तेज गर्मी में तो उन्हें इस तरह की तीन से चार कोशिश करने के बाद पानी मिल पा रहा है। यहाँ बहुपत्नी प्रथा भी अजीब रूप से दिखाई दे रही है। जितनी अधिक पत्नियाँ उतना ही अधिक मजदूरी। इससे स्थानीय सेक्स अनुपात में गड़बड़ी आई है। शोधकर्ता इन्हें वॉटर-वाइल्स का नाम दे रहे हैं। सूखे से पीड़ित विदर्भ और मराठवाड़ा में कई बार फसल तबाह होने के कारण अब पत्नियाँ परिवार के भरणपोषण के लिए आगे आने के लिए मजबूर हैं। वे घर से निकलने पर पाबंदी, घूरती निगाहों और तानों को सहने के बाद पहली बार घर से निकल कर बाहर काम कर रही हैं। कई तो बच्चों की स्कूल की फीस देने के लिए घर-घर जाकर चूड़ियाँ बेच रही हैं, कई पशुओं को बेच रही हैं, जिससे दवाएँ खरीद सकें। इस समय देश जिस तरह सूखे की चपेट में है उसने उन राज्यों को चिंता में डाल दिया है जिनकी आय का मुख्य स्रोत कृषि है। हरियाणा, पंजाब से लेकर उत्तर प्रदेश सरकार अगर अभी से सूखे से निपटने के लिए कुछ कारगर उपाय नहीं अपनाती है, तो महाराष्ट्र बनने में अधिक समय नहीं लगेगा। जिस तरह लातूर, सोलापुर में ट्रेनों से पानी पहुँचाया जा रहा है तो भयावह स्थिति यहाँ भी कदम रख सकती है। सूख चुके कुएँ, तालाब, पोखर खुद अपनी स्थितियाँ बयान कर रहे हैं, लेकिन राज्य सरकारों का अधिक ध्यान इस मुसीबत पर न होकर आगामी चुनावों पर है।

आम भाषा में सूखे का अर्थ पानी की कमी है। लंबे समय तक जल की कमी को सूखे से उत्पन्न आपदा का प्रमुख कारण माना जा सकता है। लंबी अवधि तक किसी क्षेत्र में पानी की उपलब्धता में अस्थायी कमी से यह उत्पन्न होता है जिससे अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। बारिश की कमी से फसल की हानि, सूखे का सबसे आम रूप है। बड़े क्षेत्र में फैला दीर्घकालीन सूखा, भयानक प्राकृतिक आपदा के रूप में हमारे सामने आता है, जिससे कभी-कभी अकाल की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। सूखा एक मन्द गति से उत्पन्न आपदा है, जो हमारे आर्थिक, औद्योगिक और सामाजिक क्षेत्र को कमजोर करता है। यह विकास-प्रक्रिया को उलट देता है। स्वास्थ्य की समस्याएँ उत्पन्न करता है। असामाजिक व्यवहार को जन्म देता है।

आमतौर पर अगर सूखे को बाँटा किया जाये तो इसके तीन प्रकार निकलकर सामने आते हैं। **मौसमीय सूखा** मौसम के कारण पड़ने वाला सूखा जो किसी क्षेत्र में मासिक अथवा मौसमी वर्षा में सामान्य से काफी कम होने पर उत्पन्न होता है। जैसे कि महाराष्ट्र में अगर आमतौर पर जलवायु-परिवर्तन होने पर वर्षा कम होती है, तो वहाँ नदी, पोखरों में पानी की कमी हो जाती है, जैसा कि इस समय भीषण गर्मी तथा वर्षा का न होना। इस प्रकार के सूखे से उन क्षेत्रों का नुकसान होता है जो प्राकृतिक जल पर निर्भर होते हैं। उत्तर भारत में हिमालय

से निकलने वाली नदियों के कारण सूखे की सम्भावना कम होती है लेकिन आंध्र प्रदेश तथा सीमावर्ती इलाकों में नदियों की कमी इस सूखे को भयंकर रूप दे देती है।

**जलीय सूखा** जो किसी क्षेत्र में जल की कमी से होता है। लंबी अवधि तक पड़ने वाला मौसम-संबंधी सूखा भी जलीय सूखा उत्पन्न कर सकता है। जिन क्षेत्रों में लम्बी अवधि से वर्षा नहीं हो पाती तथा जल-संरक्षण का सही इंतजाम नहीं हो पाता तो वह इस तरह के सूखे को आमंत्रित करता है। सूखाग्रस्त राज्यों के आँकड़े बताते हैं कि सिंचाई-योजनाओं की 40 प्रतिशत क्षमता का उपयोग ही नहीं हो पाता। कंट्रोलर और ऑडिटर जनरल ऑफ़ इण्डिया की रिपोर्ट के मुताबिक कई बाँध तो बन गए, लेकिन नहरें नहीं बनीं, जिससे जल का उपयोग ही नहीं हो सका।

**कृषि-सम्बन्धी सूखा** जो पानी की कमी से कृषि कार्यों को बुरी तरह प्रभावित करता है, इस भयावह स्थिति का मुख्य कारण वर्षा का अनुपात-अनुसार न होना है। अगर आसान शब्दों में कहें तो भारत में सूखे की समस्या कई कारणों से आ सकती है, जैसे- दक्षिण पश्चिम मानसून का देरी से शुरु होना, मानसून में लंबी अवधि का अंतराल, मानसून का समय पूर्व समाप्त होना तथा देश के विभिन्न भागों में मानसूनी वर्षा का असमान वितरण। इसके अलावा इन प्राकृतिक क्रियाविधियों के अतिरिक्त मानवीय गतिविधियाँ भी सूखे को बढ़ावा हैं, जैसे भू-उपयोग में परिवर्तन, अत्यधिक घास का चरना, अथवा वन कटाई आदि। इसके अलावा ग्लोबल वार्मिंग, ग्रीन हाउस प्रभाव भी मनुष्यों द्वारा निर्मित जलवायु परिवर्तन के कारण होते हैं। ये भी सूखा पड़ने के कारणों में से एक हैं।

सूखे के कारण ऐसा नहीं है कि सिर्फ़ भारत ही परेशान है। भारत के बाद पानी की भारी कमी से जूझते अपेक्षाकृत छोटे देश भी से शामिल हैं- अल्जीरिया, मिस्र, ईरान, मेक्सिको और पाकिस्तान। इनमें से चार देश अपने लिए अनाज के एक बड़े हिस्से का आयात पहले से ही किया करते हैं। सिर्फ़ पाकिस्तान आंशिक रूप से आत्मनिर्भर बना हुआ है। लेकिन हर साल 4 मिलियन की बढ़ती आबादी के कारण इसे भी जल्दी ही अनाज के लिए विश्व बाजार का रुख करना पड़ेगा। संयुक्त राष्ट्र की जलवायु-रिपोर्ट के अनुसार हिमालय के हिमनद, जो एशिया की सबसे बड़ी नदियों - गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र, यांग्जे, मेकांग आदि शुष्क-मौसम के प्रमुख जल स्रोत हैं। ये तापमान में वृद्धि और मानवीय माँग बढ़ने के कारण 2035 तक गायब हो सकते हैं।

सूखे के मुख्य कारण तथा बचाव के उपाय जलवायु-परिवर्तन सूखे का बहुत बड़ा कारक है। वर्षा की ठीक-ठीक भविष्यवाणी भी नहीं की जा सकती। तारीख आगे-पीछे होती रहती है। ये जरूरी नहीं कि पिछले वर्ष जिस दिन मानसून आया था, अगले साल भी उसी दिन वर्षा होगी। उतार-चढ़ाव आता रहता है। महाराष्ट्र में पिछले सालों में बारिश आमतौर पर होती रही है, लेकिन कभी देर से होती है, कभी अनियमित परिणाम यह होता है कि किसान बारिश के इंतज़ार में गर्मियों की फसलें नहीं लगा पाते और फिर इसका खामियाजा भुगतते हैं। इसलिए पानी का सही प्रबंधन सबसे जरूरी है।

महाराष्ट्र में सबसे ज्यादा गन्ने जैसी फसलों की खेती होती है जो सबसे ज्यादा पानी सोखती है। यह सूखाग्रस्त और पानी के मामले में दरिद्र राज्य पूरे देश की लगभग 66 प्रतिशत चीनी का उत्पादन करता है। यूपी. में गंगा के इलाकों में इसकी खेती ज्यादा बेहतर हो सकती है। इसलिए किस फसल के लिए पानी का उपयोग किया जाए, इसे लेकर भी समझदारी का अभाव है। मसलन जिन राज्यों में पानी की अधिकता है जैसे- हरियाणा, पंजाब, यूपी. इन राज्यों में सरकार को ऐसी कृषि के लिए किसानों को प्रोत्साहन देना चाहिए। कृषि प्रबंधन से लेकर भूजल संरक्षण तक के प्रयत्नों से ही जल को बचाकर भविष्य को सुरक्षित किया जा सकता है।

रंजना यादव  
बी. ए. प्रोग्राम (तृतीय वर्ष)

## एक सपना

जिंदगी की तेज़ रफ्तार में  
रिश्तों को छूटते देखा है।  
राह चलते, यूँ ही  
औरत को सरेआम पिटते देखा है।  
छोटे-छोटे बंद कारखानों से निकलते  
थक के चूर हुए बच्चों को देखा है।  
उन आलीशान बंगलों में काम करती हुई  
मैंने नन्हीं परी को देखा है।  
सड़क के कोने में पड़े युवक को साँस रुकने तक  
एक कंबल का इंतज़ार करते देखा है।  
शराब के नशे में धुत्त बाप को  
बेटे को पढ़ने की सलाह देते देखा है।  
दिल पसीजकर, आवाज़ को अंदर दबा  
दहेज के लिए पिता को हामी भरते देखा है।  
चार सिक्के कमाने की मजबूरी में  
छोटू को ढाबे पर खाली पेट काम करते देखा है।  
बूढ़े माँ-बाप को बेटे से मिलने की उम्मीद में  
खून के आँसू बहाते देखा है।  
चंद पैसों के लिए मैंने  
आत्मा का खून होते देखा है।  
पर जब मैं बस्ता थाम, कदम रखती हूँ स्कूल में  
तो चेहरे पर मुस्कान चमकने लगती है।  
नन्हे-मुन्ने बच्चों को पढ़ता देख दिल भर आता है।  
मासूम से फूलों के अंदर आगे बढ़ने का जज़्बा देख  
खुशी की लहर दौड़ पड़ती है।  
और दिमाग में बस एक ही बात आती है  
मैंने देश के लिए ये ही सपना देखा है।  
मालूम है, समय थोड़ा और लगेगा  
पर हताशा बिल्कुल नहीं, इंतज़ार है नये सूर्य का  
मैंने उन भोली आँखों में, पलते देखे हैं सपने  
एक नई उम्मीद,  
नई सुबह की पहली किरण को देखा है।

प्रज्ञा  
बी. एल. एड. (तृतीय वर्ष)

## बरसात का वो दिन

आज सुबह जब मेरी आँखें खुलीं, मैंने बाहर देखा। जैसे काले बादलों ने पूरे आसमान को ही ढक लिया हो। मौसम इतना सुहावना प्रतीत हो रहा था, मानो खुशी में प्रकृति हवाओं के साथ मिलकर एक नृत्य प्रस्तुत कर रही हो, और सुबह के इस खुशनुमा सुहाने मौसम में मेरा मन इस प्रकार का हो रहा था, कि मैं बाहर बालकनी में बैठकर उन ठंडी हवाओं का आनंद लूँ, लेकिन वह मेरा अचेतन मन था। जो मुझे इस प्रकार से सोचने पर बाध्य कर रहा था।

जब की मुझे कॉलेज जाना था पर समझ नहीं आ रहा था कि आज कॉलेज जाऊँ या नहीं, मैं तंद्रा में थी। खैर माँ के झुंझलाने पर मैं अनमने मन से बिस्तर से उठी और बालकनी में जाकर बाहर के दृश्य को देखने लगी। बाहर के सुहाने मौसम में मैं जैसे कहीं गुम सी हो गयी। कॉलेज भी जाना था। मैं अपने दैनिक क्रियाकलापों में व्यस्त हो गयी और बिना देरी किये जल्दी-जल्दी तैयार होने लगी। कॉलेज जाने की जल्दबाजी में मैं तैयार होकर अपना लंच और पुस्तकें रखने लगी। बाहर मौसम अब भी बादलों से घिरा था। माँ हमेशा की तरह आज भी मौसम को देखते हुए छाता साथ रखने को कह रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि बस बारिश होने ही वाली है और मैं अब भी बालकनी से बाहर झाँककर उस सुहावने मौसम का आनंद लेकर प्रकृति की उस प्रसन्नता को निहारने लगी। सहसा, पापा की आवाज़ से मेरा ध्यान बँटा। क्या सोच रही हो? लेट हो जाओगी बेटा। कॉलेज नहीं जाना क्या? मैंने हाँ में सिर हिलाया और घड़ी की ओर देखा, तो 8.00 बज चुके थे और मैं कॉलेज के लिए लेट हो रही थी। मैं जल्दी से बैग उठाकर सीढ़ियों से नीचे आ गयी थी। लेट होने के कारण आज पापा मुझे बस-स्टैण्ड तक छोड़कर आये थे। आसमान में काले बादल थे और ठंडी-ठंडी हवाएँ बहने लगी थीं। स्टैण्ड पर बस का इंतज़ार आज ज़्यादा नहीं करना पड़ा था। ठंडी हवाओं के साथ हल्की-हल्की फुहार भी शुरू हो गयी थी। तभी अचानक माँ की छाते वाली बात याद आयी और साथ ही एक गुदगुदाहट वाली हँसी भी। मैं आज फिर से छाता घर भूल आयी थी, परन्तु अब मैं बस में थी तो ज़्यादा भीगने की चिंता नहीं थी, पर ज्यों-ज्यों बस आगे बढ़ रही थी, त्यों-त्यों बारिश तेज हो रही थी और साथ ही मेरे हृदय की गति भी। आज बस का दृश्य भी काफी सुखद नहीं था। सब जैसे अभी-अभी नहाकर आये हों और क्योंकि अब मेरा स्टैण्ड आने ही वाला था मैं काफी असमंजस की स्थिति में थी कि बस से उतरकर किस प्रकार कॉलेज तक जाऊँगी? मेरे मन में काफी द्वन्द चल रहा था। मैं अपनी उधेड़-बुन में मग्न ही थी कि मैंने देखा बारिश तेज हवाओं के साथ और अधिक होने लगी। सुबह के लगभग 9.00 बजे थे, लेकिन उस समय बादलों के घिरे होने के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि रात्रि के 9.00 बजे हों। काफी अंधेरा हो गया था और बस में लाइटें भी ऑन कर दी गयी थीं। बाहर बारिश अब भी लगातार तेज हो रही थी। खैर, बस की गति को मंद करवाकर मैं अपने स्टैण्ड पर उतरी। बारिश इतनी तेज थी और मेरे पास छतरी न होने से मेरे रोड-क्रॉस करने पर ही मैं पूरी तरह भीग गयी थी। स्टैण्ड से कॉलेज तक का रास्ता पैदल ही तय करना पड़ा था और जब मैं पूरी तरह भीग ही गयी थी, तो अब ज़्यादा भय नहीं था। बारिश तो तेज़ थी ही साथ-साथ तेज हवा भी बह रही थी। मौसम काफी ठंडा हो गया था। मुझे अब ठंड भी लगने लगी थी। मैं सड़क के किनारे-किनारे चल रही थी। बारिश अधिक होने के कारण सड़कों पर पानी भर गया था, दूसरा कोई उपाय नहीं था। मैं उस रूके हुए पानी में से ही कॉलेज तक पहुँची। बारिश थमने का नाम ही नहीं ले रही थी, लगता था मानो, जैसे इन्द्र-देवता बहुत ही प्रसन्न हैं, लेकिन आज उन्होंने मुझे गहरी व्यथा में डाल दिया। मैं लगभग पूरी ही भीगी थी। कॉलेज में प्रवेश किया, तो मेरी और दोस्तों से मुलाकात हुई। जिनमें से मेरी कुछ मित्रों की दशा मेरे ही अनुकूल थी। वे कॉलेज भी बारिश में भीगकर ही आयी थीं। सब अपनी-अपनी परिस्थिति बता रही थीं। ठंड के मारे दाँत भी बजने लगे थे। पूरे शरीर में मानों

कंपकंपी छूट रही थी। अपने को सुखाने के प्रयास में मैं पंखे के नीचे कुछ देर के लिए खड़ी हो गयी। सूखने की बात एक ओर थी, लेकिन भीगने के बाद जो पंखे की हवा के संपर्क में आने से जो भीषण सर्दी मुझे लग रही थी, वह अपने आप में विलग थी। कुछ देर तक मैं वहीं सूखने के इंतजार में स्तब्ध खड़ी रही और फिर कुछ सूखाने के पश्चात् मैं अपनी कक्षा की ओर जा ही रही थी, कि रास्ते में मुझे मेरी मित्र अर्चना मिली। आज वह भी बारिश में भीगकर ही कॉलेज आयी थी। उसे भी भीगी देखकर मेरी हँसी छूट गयी थी और उसे मुझ पर क्रोध आ रहा था, जो कि सहज था और उस समय उसके चेहरे पर पड़ी शिकनों से साफ़ देखा जा सकता था। मैंने उसे भी पंखे के नीचे सूखने के इंतजार में बैठा दिया और फिर हम दोनों आपस में बारिश को लेकर ही बातचीत करने लगे। उसे भी काफी सर्दी महसूस हो रही थी और एक दो छीकें भी आयी थीं, तो मैंने कहा “चल यार कॉफी पीकर ही उस सर्दी से बचा जा सकता है।” उसने हाँ में सिर हिलाया। कुछ देर पंखे के नीचे बैठकर हम दोनों कैंटीन की तरफ गये। वहाँ जाकर हमने कॉफी ली। बारिश अब लगभग रुक गयी थी। मौसम अब और भी सुहावना लग रहा था। पेड़ों के हरे-हरे पत्तों पर पड़ी बारिश की बूँदे सफेद मोती की तरह चमक रही थीं। उस प्राकृतिक दृश्य को देखकर उस समय शरीर की सारी ठंडक मानो आँखों से उतर गयी थी। कितना सुकून मिल रहा था।

प्रकृति जैसे अपने पूरे यौवन पर थी। कितना अद्भुत दृश्य था, वह। हम दोनों बातें करते-करते और कॉफी पीते-पीते कक्षा तक आ गये थे। क्लास शुरू ही होने वाली थी। अब हम लगभग सूख ही गये थे और हमारी कॉफी भी खत्म हो गयी थी। लेकिन आज भी उस बरसात के दिन को याद करके मेरे और मेरी मित्र के मुख पर एक विस्मय सी हँसी छा जाती है, जो फिर रोके नहीं रुकती।

खैर, मेरी ठंड तो कॉफी पीकर दूर हो गयी थी लेकिन इस भारी बारिश के कारण आज भी कितने ही ऐसे मासूम आम जन हैं, जिनके घर में बरसात के कारण जहाँ-जहाँ कटोरे रखे मिलते हैं। जिनके पास बारिश में भीगने के पश्चात् एक जोड़ी वस्त्र भी नहीं होते। वे किस प्रकार अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए अपना जीवन-यापन करते हैं।

भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में आज भी कितने ही घर ऐसे हैं, जिनके पास बारिश में सिर छुपाने की जगह नहीं है। वे बेचारे मजबूर हैं, इस बरसात में भीगने को। इस बरसात में किसी तरह वे किसी फ़लाईओवर या रेलवे स्टेशन या बस शेल्टर के नीचे खड़े होकर खुद को खुशनसीब समझते हैं। उनकी जिंदगी में कहाँ वो आनंद है, कहाँ वो खुशी है? हम अपने लिए तो प्रबंध कर लेते हैं, लेकिन एक वह वर्ग जो दूसरों पर आश्रित है, इन बरसात के दिनों में उनकी स्थिति का अंदाजा भी हम नहीं लगा सकते। हमारे समान ही उनका जीवन है, लेकिन हम उन्हें भूल जाते हैं और हम केवल अपनी समस्याओं तक ही सीमित होकर रह जाते हैं। उनका जीवन भी तो है। वे इस भारी वर्षा में कितने ही कष्टों का सामना करते हैं, उनके मुख पर वो खुशी नहीं होती, बल्कि वे एक वैषम्य भरा जीवन व्यतीत करते हैं। भीतर से वे काफी आहत होते हैं और अपने दुःख को वे ही भलीभाँति जानते हैं। हम उनकी समस्याओं को नज़रअंदाज़ कर देते हैं।

भारी बारिश के कारण आज बाहर रिक्शा उदास खड़ा है। घर में तवे का भी यही हाल है। मीना सोच रही है कि बारिश थम जाये, तो कुछ खाना पके। पप्पू, बालकनी में खड़े होकर खुश हो रहा है। ट्यूशन से छुट्टी! हे भगवान् ये बारिश ऐसे ही होती रहे। सच्ची, हर बारिश की अपनी अलग कहानी है।

दोस्तों, सच ही है- बारिश भी अजीब ही है, जो किसी के चेहरे पर मुस्कान लाती है, तो किसी के चेहरे पर शिकन। फ़र्क तो बस इंसान का है।

ऑचल पाल  
हिन्दी विशेष (तृतीय वर्ष)

## जन्म तो लेने दो मुझे

कर भरोसा कोख पर, लज्जित न होने दूँगी कभी  
धन पराया होकर कभी, बगिया मुरझाने न दूँगी कभी  
जन्म तो लेने दो मुझे...

लक्ष्मी का रूप है मुझमें, सरस्वती का स्वरूप है मुझमें,  
दया का भंडार है मुझमें, ममता का भंडार है मुझमें,  
जन्म तो लेने दो मुझे...

हिमालय तक पहुँची कभी, पहुँची हूँ चाँद पर,  
तू भी कभी बेटी रही थोड़ा पलटकर याद कर,  
जन्म तो लेने दो मुझे...

परिवार को बाँधा है मैंने, गृहस्थी को पिरोया है कभी,  
औलाद को सूखा रखकर, आँचल को भिगोया है कभी,  
जन्म तो लेने दो मुझे...

त्याग, तपस्या और बलिदान, यही मेरी परिभाषा है,  
दो-दो कुलों को रोशन करूँ, यह मेरी अभिलाषा है,  
जन्म तो लेने दो मुझे...

बेटा अगर हीरा है तेरा, मोती से कम मैं भी नहीं,  
रोशन करूँ, आँगन तेरा, ज्योति से कम मैं भी नहीं,  
जन्म तो लेने दो मुझे...



सिमरन  
हिंदी विशेष (प्रथम वर्ष)

## स्त्री-विमर्श

स्त्री-विमर्श एक ऐसा आंदोलन है, जो पुरुष-प्रधान समाज में नारी द्वारा अपने स्वाभिमान, अधिकार, स्वतंत्रता व अस्मिता की तलाश में जारी एक संघर्ष को दिखाता है। यह विरोध किसी एक पुरुष प्रधान समाज के लिए है, जो मान्यताओं और रूढ़ियों के चलते स्त्री को समानता का अधिकार प्रदान नहीं करता।

स्त्री-विमर्श की जब मैं चर्चा करती हूँ तो मेरे जहन में सबसे पहले पितृसत्तात्मक व्यवस्था, जो कि हमारे समाज में एक परंपरा की तरह चली आ रही है, इसका ख्याल आता है। इस व्यवस्था में पुरुष वर्ग अपने विचारों, जो चाहे अच्छे हों या बुरे, सभी को स्त्री-वर्ग पर जबरन थोपता चाहता है।

स्त्री-विमर्श को नारीवाद के नाम से भी जाना जाता है। स्त्री-विमर्श ने ही स्त्रियों के भीतर यह चेतना पैदा की कि उनकी बातों को क्यों दबाया जाता है। स्वहीन क्यों किया जाता है? उनका स्वतंत्र अस्तित्व क्यों नहीं है? वे क्यों किसी और के भरोसे में या दबाव में हैं? परिवार का अनुशासन स्त्रियों को ही क्यों अनुशासित करना पड़ता है? स्त्रियाँ आर्थिक स्थिति से मजबूत होते हुए भी परिवार और समाज में खुद को दबी, कुचली क्यों महसूस करती हैं? क्या आर्थिक स्वतंत्रता ने उन्हें मानसिक तौर पर स्वतंत्र बनाया है।

स्त्री-विमर्श की बात करते हुए ऐसे असंख्य प्रश्नों के घेरे दिमाग पर चहल-कदमी करते हैं और सोचने पर मजबूर करते हैं कि आखिरकार स्त्रियों की दशा ऐसी क्यों है? तथा वे स्त्री-विमर्श के तहत स्त्री-मुक्ति के संदेश से आगाह करते हैं।

लेकिन आज के दौर में स्त्रियाँ अपने अधिकारों को पहचानने लगी हैं, अस्मिता, अस्तित्व के बारे में सोचने लगी हैं। अपनी भूतकाल की दशाओं को देख असंख्य बाधाओं और बेड़ियों के निशानों, घावों को भी पहचानने लगी हैं।

“जब गुलाम को अपनी बेड़ियों का एहसास पैदा होता है तब वह अपनी बेड़ियाँ काटता है”, ठीक यही बात स्त्रियों पर भी लागू होती है। जिस दिन स्त्रियाँ अपनी गुलामी की असंख्य, अदृश्य बेड़ियों की जंजीरों-जो कि जबरन बाँधी गई हैं। उसे पहचान लेंगी, तो वह दिन दूर नहीं जब वे पितृसत्तात्मक जकड़बंदी से मुक्त होकर अपने अधिकारों के बारे में सोचेंगी।

अगर ‘स्त्री’ शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में जानना चाहें तो बता दें कि यह ‘स्त्री’ शब्द ‘स्त्यै’ धातु से बना है। जिसका तात्पर्य लज्जायुक्त बताया गया है। पतंजलि ने कहा नारी को स्त्री इसलिए कहा जाता है क्योंकि गर्भ धारण करने की स्थिति उसके भीतर होती है।

ऋग्वेद में ‘नृ’ शब्द का अर्थ है- वीरता का काम करना, दान देना। ‘नर’ शब्द का प्रयोग भी वीर, दाता और नेता के अर्थ में हुआ है। स्त्री का नाम भी इन्हीं विशेषताओं के कारण नारी पड़ा होगा। वे युद्ध और शिकार में वीरों की सहायिका रही होगी। अतिथियों के सत्कार, दान आदि का भार इन्हीं पर था।

वैदिक काल में हम देखते हैं तो कन्या और पुत्र में भेद नहीं था। सीता, राम के साथ राजगद्दी पर बैठती थी। अयोध्या के राजा दशरथ की तीनों रानियों को सभा में राजगद्दी पर राजा के साथ समान निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त था। यह भेद जो कि स्त्रियों के ऊपर जबरन थोपा जाता है, वह बाद में पैदा हुआ।

3000 वर्ष पूर्व जो समानतापूर्ण प्रशंसनीय स्थिति भारतीय नारियों की थी, वह पूरे विश्व में कहीं भी नहीं थी, परंतु जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे स्त्री की स्थिति में परिवर्तन आता गया और इसका खासा प्रभाव स्त्रियों पर पड़ा। दबाव को सहना पड़ा।

यहाँ स्त्री-विमर्श की बात करते हुए यह बताना आवश्यक होगा कि स्त्रियों के जो नाम प्रचलित हैं, उनमें वामा, अबला, सुंदरी, प्रमदा, ललना, मानिनी आदि प्रमुख हैं और इन्हीं स्थापनाओं की वजह से उनकी सुंदरता को देखा जाता है। स्त्री को मानव से सुंदर वस्तु में बदलने का यह प्रयत्न पुरुष-प्रधान समाज की देन है।

जैसे कि जो स्त्री सौंदर्य बिखेरती है, वह वामा है। जिस स्त्री में शारीरिक बल की अपेक्षा मानसिक गुण अधिक होता है उसे अबला कहते हैं। जिसे देखते ही मन आकर्षित हो जाए उसे सुंदरी कहते हैं। इसी तरह लगभग स्त्री के पर्यायों को लेकर उनके आचरण व सौंदर्य को देखा जाता है, जबकि पुरुष के साथ ऐसा नहीं है।

19वीं सदी को स्त्रियों की शताब्दी कहना बेहतर होगा, क्योंकि इस सदी में सारी दुनिया में उनकी अच्छाई बुराई सभी पर खूब बहस हुई और इस बहस का खासा लाभ स्त्रियों का हुआ और उन्हें इसके बाद पुरुषों की बराबरी करते हुए काम करने और शिक्षा प्राप्त करने का एक सुनहरा अवसर मिला। लेकिन इसके बावजूद भी स्त्रियाँ पुरुषों की भाँति स्वतंत्र नहीं हो सकीं। घर आकर बच्चों को संभालना, बुजुर्गों का ख्याल रखना, घर के सभी कार्यों को पूरा करना इनका ही दायित्व बना रहा, जबकि पुरुष वर्ग केवल बाहर के काम ही करता रहा। घरेलू कार्यों में उसकी कोई भी सहभागिता नहीं रही। अगर आज की बात की जाय तो आज भी समाज में यह स्थिति स्पष्ट रूप से लगभग सभी ऐसे घरों में देखी जा सकती है, जहाँ स्त्री-पुरुष दोनों बाहर काम करते हैं परंतु बाहर के कार्य निपटाने के पश्चात् घर के सभी कार्यों का बोझ स्त्री पर ही पड़ता है। पुरुष को इससे कोई मतलब नहीं होता।

नारीवाद को अगर मार्क्सवादी सिद्धांत से समझा जाय तो स्त्रियों के प्रति हो रहे अत्याचारों को आसानी से समझ सकेंगे और यह भी कि उनकी स्थिति वास्तव में बहुत ही दयनीय है।

मार्क्स का मानना था कि जिस प्रकार से पूँजीपति वर्ग अपने अत्याचार, सर्वहारा वर्ग (गरीब) पर करता है एवं पूँजीपति अपने विचार वे चाहे जैसे भी हों, सर्वहारा पर थोपता है तथा हर प्रकार से मार-पीटकर समाज में बेइज्जत कर अपने अनुसार सर्वहारा को चलाता है, ठीक इसी प्रकार की स्थिति स्त्रियों के साथ है। वह हर एक ऐसे काम करती है जो पुरुष वर्ग चाहता है। पुरुष बाहर कार्य करते हैं तो उन्हें मुआवजा मिलता है परंतु जो स्त्री घर पर रहकर बच्चों और बुजुर्गों को संभालते हुए घर के सभी कार्यों को दिन से लेकर रात तक निपटाती है। उसके बदले उसे कोई मुआवजा नहीं मिलता। जबकि श्रम तो दोनों करते हैं लेकिन मुआवजा केवल बाहर के कार्य को निपटाने वाले को ही मिलता है।

“मुझे एक बात समझ में नहीं आती कि शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम वो दोनों वर्ग करते हैं परंतु इन दोनों वर्गों में इतनी असमानता क्यों है? अगर इसका मुख्य कारण लिंग की विभेदता है तो यह सबको पहचानना होगा कि यह समाज के द्वारा ही बनाए गए भेदभाव हैं जो कि मानव-समाज की देन है और विभेदीकरण का एक प्रमुख कारण भी। जिसे खत्म किए बिना एक सुचारू रूप के समाज की स्थापना करना एक कल्पना मात्र से ज्यादा कुछ नहीं होगा।”

यहाँ यह बताना आवश्यक होगा कि किसी भी समाज में देश के निर्माण के लिए पुरुष और स्त्री सामाजिक सिक्के

के दो पहलू हैं। यह एक-दूसरे के पूरक हैं। इन दोनों की आवश्यकता एक-दूसरे से जुड़ी हुई है। आज स्त्री ने अपनी शक्ति को पहचानना शुरू कर दिया है। जिस कारण पुरुष वर्ग समाज में किसी हद तक भयभीत हुआ है और स्त्री को अपने समान समझने की कोशिश कर रहा है। जिससे नारी से जुड़े कई अनसुलझे मुद्दे सामने आ रहे हैं।

जब स्त्रियों की शिक्षा की बात आती है, तब स्त्रियों को शिक्षित करने के महत्त्व पर सबसे पहले सार्वजनिक बहस राजा राममोहन राय द्वारा 1815 में स्थापित 'आत्मीय सभा' द्वारा बंगाल में छेड़ी गई और इसके पश्चात् लगभग सभी जगहों पर स्त्रियों की शिक्षा से सम्बन्धित चर्चा सामने आने लगी।

“किसी भी समाज की सामाजिक व्यवस्था ही समाज की उन्नति का कारक होती है। व्यवस्था बदलेगी तभी समाज बदलेगा, और जब समाज की सोच बदलेगी तो स्त्रियों की दशा जरूर बदलेगी।”

संध्या वर्मा  
हिंदी विशेष (द्वितीय वर्ष)

## कहीं न कहीं

छुपी हुई हूँ  
या देखना नहीं चाहती,  
यही सवाल है मन में  
कहीं न कहीं।

दुनिया घूमने की चाह में  
तय कर लिये कितने रास्ते,  
पर एक कोना छूट रहा है  
कहीं न कहीं!

रोज सच की तलाश में  
निकल पड़ता है ये मन,  
पर लगती है तलाश अधूरी  
कहीं न कहीं!

कहती हूँ ये अक्सर  
कि जानती हूँ खुद को,  
पर जानना अभी बाकी है  
कहीं न कहीं!

रचना सिंह  
बी. एल. एड (चतुर्थ वर्ष)

## चाँद से इश्क

यूँ तो सूरज की पहली किरन, नई उम्मीद सी लगती है  
भर दे ज़िन्दादिली हर तरफ, ऐसी उसकी हस्ती है।  
वो सब कुछ तो है उसके गलियारे में,  
जो इक ज़िन्दगी माँगती है।  
पर फिर भी न जाने क्यों, मुझमें शाम होने की प्यास सी लगती है?  
क्योंकि शाम एक ज़रिया है उस रात तक पहुँचने का,  
जो मेरे सोए हुए अरमानों को समझती है।  
जब पूरी दुनिया नींद के आगोश में उतरती है  
वो रात ही तो है, जो मेरी सहेली सी लगती है।  
लोग कहते हैं कि उन्हें चाँद में उदासी सी दिखती है  
पर मुझे वो उदासी नहीं, खामोश आवाज़ें सी लगती हैं,  
जो सन्नाटा बनकर शोर करती फिरती हैं।  
जो चीख-चीख कर अपनी तन्हाई का फ़साना सा सुनाती हैं।  
और फिर उसी तन्हाई में से कुछ हसीन पल चुनकर खुद ही खुश हो जाती हैं।  
वहीं चाँद, जो वैसे तो बेहद खूबसूरत होने का दावा करता है  
पर कई दाग अपने दामन में छुपाए-धुँधली तस्वीरें लिए फिरता है।  
फिर क्यों आखिर वही है, जो मुझे सुकून दे पाता है।  
मेरी रूह को मुझसे चुराकर, मुझे किसी दूसरी दुनिया में ले जाता है।  
बेशरम हूँ मैं भी तो.....  
जो सारे नकाब उतारकर उससे मिलने जाती हूँ।  
ऐब हैं उसमें कई और मुझमें भी उतने ही,  
पर परिंदों की तरह आज़ाद मैं उसी अँधेरे में ही पाती हूँ।  
शायद इसीलिए वो अंधेरा, वो काली रात और वो चाँद,  
मेरा हमसफर, मेरी सहेली और मेरा इश्क बनते से लगते हैं।  
और इश्क के दरिया का दायरा इतना गहरा है कि  
मैं डूबे नहीं डूबती और सँभल भी कहाँ पाती हूँ?

तनुजा राना  
बी. एल. एड. (चतुर्थ वर्ष)

## समय की कल्पना

संसार में विद्यमान सभी प्राणी एवं वस्तुएँ और उनकी गति तथा स्थिति इस समय के साथ संबद्ध हैं। समय एक मात्र ऐसा माध्यम है, जिसके अनुसार ही दुनिया चलती है। समय के द्वारा ही प्रत्येक कार्य चल रहा है। समय अपने आप में एक अनोखा रहस्य है। ऐसा रहस्य जिसकी कल्पना भी हमारी सोच से परे है। समय कैसे चलता है? समय की उत्पत्ति और कब तक है ये समय? ये सभी प्रश्न किसी के भी मन में समुद्री लहरों के समान हिलोरें उत्पन्न करते हैं। हम सभी के मध्य ऐसा वार्तालाप होता रहता है कि ये कार्य समय पर कर लो या तुम्हारे पास अभी समय है और कुछ समय ही तो मिला है तो भरपूर जीओ। अन्यथा एक बार समय निकल गया, तो वह फिर कभी भी वापस नहीं आ सकता है। आप उसे आर्थिक, सामाजिक या भावनात्मक किसी प्रकार की समर्थता का हवाला देकर भी वापस नहीं ला सकते हैं। सोचो, अगर समय वापस आ पाता तो इतिहास कभी दर्ज ही नहीं हो पाता। सचमुच समय ने ही मानो इतिहास का निर्माण किया है। समय का सिद्धांत असल में क्या है, आजतक भी भली-भाँति इसे कोई नहीं समझ पाया।

कभी ऐसी कल्पना होती है कि इस समय की भी तो कोई समय सीमा होगी, लेकिन कब, कैसे? मानो समय समाप्त हो जाये तो सब रुक जायेगा। ऐसी अवस्था, जहाँ कुछ गतिमान नहीं होता अर्थात् जहाँ समय है, वहाँ गति है और जहाँ समय नहीं वहाँ गति नहीं। क्या हम सभी बिना समय, गति के होने की कल्पना कर सकते हैं? शायद कभी नहीं, परंतु अगर ऐसा हो तो फिर क्या? हम इसके आगे के परिणामों की कल्पना कर सकते हैं और यह कल्पना संसार की हर एक वस्तु से परस्पर जुड़ी है जिसे अनदेखा बिल्कुल नहीं किया जा सकता है।

यदि हम समय को कुछ वैज्ञानिक ढंग से देखें, तो हम इसे गुरुत्वाकर्षण शक्ति के साथ जोड़ते हैं, जहाँ समय की गति गुरुत्वाकर्षण शक्ति निर्धारित करती है, जहाँ गुरुत्वाकर्षण शक्ति अधिक है, वहाँ समय की गति मंद है। जबकि जहाँ ये शक्ति कम है, वहाँ समय की गति तेज है और इसीलिए हम पृथ्वी से बाहर निकलकर इस विश्व में अन्य ग्रहों की गुरुत्वाकर्षण शक्ति को जानकर पृथ्वी से बाहर निकलकर इस विश्व में अन्य ग्रहों की गुरुत्वाकर्षण शक्ति को जानकर पृथ्वी के साथ तुलना करते हैं और देखते हैं कि किस प्रकार इस समय की रफ्तार से बचा जाये क्योंकि समय के साथ चलते रहना इस प्रकृति का नियम है। हम सभी प्रकार के नियमों को नकार सकते हैं परंतु प्रकृति समय को हम चाह कर भी नहीं नकार सकते हैं। यह अनैच्छिक नियम है जो हम पर अपने आप लागू होते हैं और सभी पर सम रूप से। शायद तभी हम सकते हैं कि हम आपस में भेदभाव कर सकते हैं परंतु प्रकृति सभी को समान रखकर किसी भी प्रकार के भेदभाव को नहीं दर्शाती है। यह प्रकृति—नियम सभी पर समान रूप से लागू होते हैं।

जब वैज्ञानिक तौर पर हम समय को देखते हैं तो गुरुत्वाकर्षण बल हमें ज्यादा प्रभावी दिखता है परंतु वह सिर्फ समय की गति को कम और ज्यादा करने का कार्य कर सकता है लेकिन समय को नहीं रोक सकता है। जब यह बल समय को रोक दे, तभी हम पूर्ण रूप से इस बल को अधिक प्रभावी घोषित कर सकते हैं परंतु शायद अभी तो यह संभव नहीं है और है भी या नहीं कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि ये सब मात्र एक कल्पना है। बिना समय गति का होना अमर हो जाने के समान है। लेकिन अगर ऐसा होता है तो फिर संसार में प्रजनन तथा अन्य किसी भी प्रकार की वस्तु का उद्भव नहीं होगा।

इस संसार में सारी चीजें समय के साथ चलते-चलते बनती हैं और उसके साथ ही मिट जाती हैं। इस दुनिया

में प्रत्येक वस्तु की समय-सीमा निर्धारित है। बस इतनी है कि यह सीमा सभी पर अलग-अलग तरीकों से निर्धारित है लेकिन लागू सभी पर समान रूप में है। कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु को समय के साथ चलते रहना जरूरी है। अगर आप समय के साथ नहीं चलते या उसके विपरीत जाते हैं तो आपका विनाश संभव है। इस दुनिया में व्याप्त प्रत्येक स्थिर वस्तु का अंत निश्चित होता है, जैसे अपनी जगह पर खड़ा पहाड़ धीरे-धीरे हर गतिमान चीज के द्वारा कटता जाता है और एक दिन उसका अस्तित्व पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है। किसी भी स्थिर वस्तु पर गतिमान वस्तु हावी होती है क्योंकि गति के साथ समय है और समय किसी का भी साथ नहीं निभाता है। जिसका जितना साथ तब तक वह आपके साथ। शायद दुनिया में समय ही ऐसी चीज़ है, जिस पर किसी इंद्रिय का जोर नहीं है। वर्तमान में अगर हम समय की बात करें, तो समय बलवान है। समय के साथ चलने में ही सभी की भलाई है। समय का उपयोग ही समय से बचने का उपाय है। समय का कौन कितनी अच्छी तरह उपयोग करता है, उसके लिए फिर उस समय-सीमा का होना आवश्यक नहीं क्योंकि उसे उतनी ही सीमा में सब कुछ प्राप्त हो सकता है। समय का विषय अनंत है। ये तो मात्र एक कल्पना है और कल्पना भी समय के समान अनंत है।

डौली मीना  
बी. ए. प्रोग्राम (द्वितीय वर्ष)

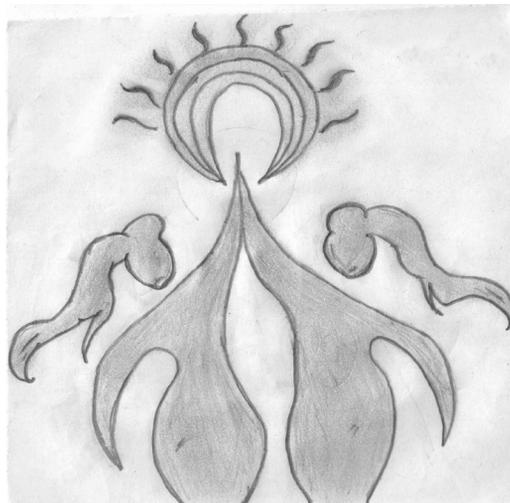
## एहसास

मैं गिरना नहीं, उठना  
चाहती हूँ  
जीवन जीना नहीं, महसूस करना  
चाहती हूँ  
पंख तो है पर उनसे अकाश में उड़ना  
चाहती हूँ  
खिलना नहीं, खिलखिलाना चाहती हूँ  
कहीं रुकना नहीं, आगे बढ़ना  
चाहती हूँ  
मंज़िल पाने की सिर्फ़ चाह नहीं, उसको  
पाना चाहती हूँ  
मैं सपनों को हकीकत बनाना  
चाहती हूँ।

कोमल  
हिंदी विशेष (तृतीय वर्ष)

## महिला सशक्तिकरण

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,  
विश्वास—रजत—नग—पल—तल में,  
पीयूष स्रोत सी बहा करो,  
जीवन के सुंदर—समतल में।



कवि जयशंकर प्रसाद की ये पंक्तियाँ सुनते ही नारी होने पर गर्व हो उठता है। मन प्रफुल्लित हो उठता है सोच कर कि ईश्वर की इतनी सुंदर कृति के रूप में जन्म लेने का अवसर मिला, वह जो घर बनाती है और समाज के निर्माण में भी उतना ही योगदान देती है।

परंतु आज की एक विडंबना यह भी है कि आधुनिकता के कई दावे करने के बाद भी समाज में आज तक 'महिला' शब्द के साथ 'सशक्तिकरण' का प्रयोग हर कहीं देखने को मिलता है। आज भी महिलाओं को अपने मूलभूत हकों के लिए संघर्ष करना पड़ता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि पितृसत्तात्मक समाज इस कदर स्थापित हो चुका है कि नारी की आवाज़ दबाने और उसका अस्तित्व छुपाने की पूरी कोशिश की जाती है।

नारी सशक्तिकरण एक पूरी प्रक्रिया है जिसके कई चरण हैं—यह प्रारंभ होती है एक लड़की के जन्म के साथ। लोगों में जागरूकता फैलाना ताकि वे एक बेटी के जन्म को भी उसी तरह मनाएँ जिस तरह कि बेटे के साथ होता है, यह अनिवार्य है। फिर बात आती है उसके पालन—पोषण और शिक्षा की। अक्सर हम ऐसी महिलाओं के बारे में सुनते हैं जिन्होंने सही दिशा मिलने पर कई मुकाम हासिल किए। एक स्वस्थ समाज उसी को कहा जा सकता है। जो महिला सशक्तिकरण के पक्ष में हो तथा इस दिशा में कार्य करने के लिए निरंतर प्रयासरत हो। यही नहीं लघु स्तर पर पर महिलाओं को कार्य सिखाना व उन्हें इस काबिल बनाना कि वे खुद के पैरों पर खड़े हो अपना जीवन सुचारु रूप से व्यतीत कर सकें, इसी सशक्तिकरण के भीतर आता है।

महिलाओं को समाज में बराबर स्थान व सम्मान देने की माँग कोई विशेषधिकार की माँग नहीं, बल्कि एक मूल—भूत हक की आस रखना है। यहाँ ध्यान देने योग्य यह है कि जब एक नारी अपनी परेशानियों व ज़रूरतों को समाज के सामने उठाने का प्रयास करने लगे, तो इसे महिला सशक्तिकरण की ओर एक महत्वपूर्ण कदम माना जाना चाहिए। अतः यह कहना सही होगा कि सभी स्त्रियों के द्वारा अपने छोटे—छोटे प्रयास करने से हम एक संतुलित समाज की रचना कर सकते हैं, जिसमें लिंग के आधार पर भेद—भाव न हो।

अस्मिता पाण्डे  
अंग्रेजी विशेष, प्रथम वर्ष

## नींद

सोती रहूँ, सोती रहूँ  
लम्बी नींद में,  
एक विशाल बरगद हो,  
जिसके ऊपर चींटियाँ ग़श्त लगाती हुई  
मेरी रखवाली करें।  
और पत्ते अपनी ठंडी हवा का खज़ाना  
मुझ पर खाली करें।  
कसी हुई खाट  
खुले हुए कपाट।  
खेतों के बीच सुनहरी-सी मिट्टी में,  
सौंधी-सौंधी खुशबू जैसे यार की चिट्ठी में।  
एहसास न हो सुबह होने का  
शाम खोने का।  
अँगड़ा कर पैर नीचे लटक जाएँ,  
धरती को छूकर फिर सिमट जाएँ।  
ऐसी नींद धरती पर है नहीं,  
स्वर्ग में ही होगा ऐसा समां कहीं।  
पर उसके लिए तो सोना पड़ेगा  
लम्बी नींद में,  
और हमारे पास तो मरने का भी वक्त नहीं।

रश्मि एस. मंडोत्रा  
बी. ए. गणित ऑनर्स (प्रथम वर्ष)

## उस ओर

समा जो बँध गया  
सुनहरे वृत्तान्त अथाह जल सागर को देख  
उन झुरमुटों के बीच से  
हरनील का अनूठा संगम।  
सरसराती हुई गाड़ी के साथ  
वो लहरों का अपनी ओर बढ़ना  
शायद मिलकर कुछ कहना चाहता है  
वो बृहत् कल्पना से परे।  
सोचती हूँ कि कहेगा-फिर कैसे आना हुआ  
उस ओर से इस ओर  
समा जो बँध गया हम दोनों के मिलन से  
सोचा समेट लूँ इस पल को  
पर कैसे?  
जैसे उसे गुमान हो  
इतने पानी को अपने जिगर में समेट लेने के लिए  
हिम्मत होनी चाहिए  
जैसे वो गुमान से लहराते हुए कह रहा हो  
मुझसे कि 'है दम तो बर्यौ कर के बताओ'  
तो मैंने भी कह दिया उससे  
'है दम तो मीठा बन के दिखाओ'।

निधि पटेल  
हिंदी ऑनर्स (प्रथम वर्ष)

## सच्चा प्रेम

एकाएक घर में शान्ति छा जाती है। धीरे-धीरे घर के एक कोने से आती धूप भी मंद होकर खत्म हो रही है। घर में केवल 'युग' और उसकी प्राणहीन पत्नी 'मीरा' बिस्तर पर पड़ी है। जिस अनहोनी के इंतजार में युग निःशब्द बैठा था, अंततः वह घटित हो चुकी है। जिसके बिना संसार महत्त्वहीन हो गया है, उसे छोड़कर 'मीरा' जा चुकी है। व्यक्ति सोचता है कि अगर ऐसा हुआ तो वह बर्दाश्त नहीं कर पाएगा और न जाने क्या कर बैठेगा? युग ने भी कहाँ सोचा था कि 'मीरा' के बिना उसे जीना होगा। दो दिल एक जान प्रतीत होते थे दोनों। जब कभी 'युग' मीरा से दूर जाने की बातें करता, मीरा की आँखें नम हो जाती और कहती युग बड़ी तपस्या के बाद स्वप्न संसार सच हुआ है। यह टूट गया तो मैं जी नहीं पाऊँगी।

युग भी मीरा से बहुत प्रेम करता था। जब तक मीरा कॉलेज से वापस न आती उसका जी न लगता। उसके मुख पर मीरा के न आने तक एक चिंता, उत्सुकता, परेशानी का भाव घुला-मिला रहता।

जब मीरा आ जाती तभी प्रसन्नता से दोनों साथ में अपने स्वप्न संसार को जीते। घर में केवल वे ही दोनों तो थे। किंतु उनका घर इसी से भरा रहता। दोनों में इतना प्रेम था कि मानों एक पल भी नहीं रह पाएँगे। आज युग उदास है दुखी है, किंतु सहारा देने के लिए मीरा नहीं है।

युग आज अपने जिंदा रहने पर शर्मिंदा है। उसे अपनी जिंदगी बोझ प्रतीत हो रही है। इंसान को शायद सबसे ज्यादा गलतफहमी अपने बारे में ही होती है। वह आज सोच रहा है कि क्या सचमुच प्रियजन के चले जाने से जीवन को नष्ट करना सहज है? मीरा के इस दुनिया में न होने के बावजूद वह जिंदा क्यों है, उसकी साँसें क्यों नहीं रुक रही हैं। युग का जीवन अब उसके लिए अभाव व दुर्बलता, उदासीनता का क्रीड़ा-स्थल बन गया।

उसे रात के घनघोर सन्नाटे में मीरा से की हुई बात याद आती है। मीरा ने युग से वादा लिया कि वह अपनी जिंदगी अच्छे से व्यतीत करेगा। कभी उदास नहीं होगा। उनके प्रेम को अब केवल युग ही तो जिंदा रख सकता था।

फ़िल्म के सीन की तरह युग को सब याद आ रहा है। एक साल पहले की बात है, लेकिन मानों कल ही विवाह हुआ था। शादी के लिए युग और मीरा के परिवार वालों ने दोनों को मिलवाया था। परंतु मीरा के साँवले रंग के कारण मीरा के घरवाले उम्मीद छोड़कर बैठे थे। मीरा की चाची उसकी माँ से कहती थी, 'दीदी करीबन 12-13 रिश्ते देख चुके हैं, साँवले रंग के कारण कहीं बात न बनी। लगता है तुम्हें मीरा को घर पर ही पालना पड़ेगा।'

मीरा की माँ की आँखों में दुख, घृणा, लज्जा का भाव आँखों से आँसू बनकर बह निकला। माँ के लिए अपनी बेटी बोझ न थी किंतु समाज के लिए वह अपने घर में कुंवारी रहती तो खटकती। किंतु युग को मीरा पहली नज़र में पसंद आ गई। उसके सहज, सरल व्यवहार से युग मोहित हुए बिना न रह सका। दोनों ने आपसी सहमति से विवाह कर लिया।

युग भी सबका ध्यान रखने वाला उसूलों पर चलने वाला व्यक्ति था। उसके दिल में बहुत करुणा थी। वह सड़क पर घायल जानवर की भी ऐसे देख-रेख करता मानो बरसों से जानता हो। युग का यही गुण तो मीरा को उसकी ओर आकर्षित करता था।

मीरा रोज़ कॉलेज जाती और युग रोज़ की तरह उसका इंतजार कर रहा था। किंतु आज तो घड़ी ने भी शाम के 6 बजा दिए। मीरा का फ़ोन भी नहीं लग रहा था। एकाएक उसे याद आया कि आज तो मीरा ने जल्दी आने का वादा किया था। युग के मन में एक डर, भय, पैदा हो रहा था। तभी उसके पास एक फ़ोन आया। “आपकी पत्नी का एक्सीडेंट हो गया है।” यह सोचते-सोचते उसकी नज़र सामने प्राणहीन पड़ी मीरा पर जा गुज़री।

मन ही मन एक वादा किया कि क्यों केवल स्त्री ही अपने प्रेम के लिए सहती है, एक स्त्री ही क्यों उन्हीं यादों के सहारे रहे?

आज मीरा को गए दो महीने बीत गए। किंतु युग का जीवन जैसे रुक गया हो। उन्हीं यादों में जीते-जीते कब दो महीने बीते उसे होश ही न था। यदि याद आता तो खाना खा लेता, नहीं तो अपने-आपको उसकी यादों में खोए रखता। युग मीरा के प्रति अपने एकनिष्ठ प्रेम का परिचय देते हुए मीरा की यादों के सहारे जीवन निर्वाह करने लगा है।

किंतु इन्हीं यादों में युग को संसार के सारे सुखों का अनुभव मिलता है। मीरा का ऐहसास देता है। इस अधूरेपन में भी युग को सम्पूर्णता का ऐहसास होता है। युग के लिए उसका संसार पूर्ण है। कहीं रिक्त नहीं। कहीं कोई अभाव नहीं।

अंजली दहिया  
एम. ए. हिन्दी ऑनर्स

## मेरे जाने के बाद...

सजायेंगे वे सेहरा मेरे जाने के बाद  
वे आयेंगे पास मेरे जाने के बाद,  
जो निभाये नहीं मेरे रहते  
क्या निभायेंगे मेरे जाने के बाद।  
महज़ दिखावा है उनका  
जो आये हैं दो आँसू लेकर  
बोलते नहीं थे,  
मैं रहता था इन्हीं के पास  
क्या वे मुझे पायेंगे, मेरे जाने के बाद।

अंजना  
बी. ए. हिन्दी ऑनर्स (तृतीय वर्ष)

## बदलता समय और महिलाएँ

भारत में महिलाओं की स्थिति ने पिछली कुछ सदियों में कई बड़े बदलावों का सामना किया है। प्राचीन काल में पुरुषों के साथ बराबरी की स्थिति से लेकर मध्ययुगीन काल के निम्न स्तरीय जीवन और साथ ही कई सुधारकों द्वारा समान अधिकारों को बढ़ावा दिये जाने तक भारत में महिलाओं का इतिहास काफी गतिशील रहा है। आधुनिक भारत में महिलाएँ राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष, प्रतिपक्ष की नेता आदि जैसे शीर्ष पदों पर आसीन हुई हैं।

विशेष रूप में महिलाओं की भूमिका की चर्चा करने वाले साहित्य के स्रोत बहुत ही कम हैं 1730 ई0 के आसपास तंजावुर के एक अधिकारी त्रयम्बकयज्वन की स्त्रीधर्म-पद्धति, इसका एक महत्वपूर्ण अपवाद है। इस पुस्तक में प्राचीन काल के अपस्तंभ सूत्र (चौथी शताब्दी ई0) के काल के नारी-सुलभ आचरण संबंधी नियमों को संकलित किया गया है।

कुछ समुदायों में सती, जौहर और देवदासी जैसी परंपराओं पर प्रतिबंध लगा दिया गया था और आधुनिक भारत में ये काफी हद तक समाप्त हो चुकी है। हालाँकि इन प्रथाओं के कुछ मामले ग्रामीण इलाकों में आज भी देखे जाते हैं। कुछ समुदायों में भारतीय महिलाओं द्वारा परदा-प्रथा को आज भी जीवित रखा गया है और विशेषकर भारत के वर्तमान कानून के तहत एक गैरकानूनी कृत्य होने के बावजूद बाल-विवाह की प्रथा आज भी प्रचलित है।

1992-93 के आँकड़ों के मुताबिक भारत में केवल 9.2 प्रतिशत घरों में ही महिलाएँ मुखिया की भूमिका में हैं। हालाँकि गरीबी की रेखा से नीचे के परिवारों में लगभग 35 प्रतिशत को महिला मुखिया द्वारा संचालित पाया गया है।

पुलिस रिकॉर्ड में महिलाओं के खिलाफ़ भारत में अपराधों का उच्च स्तर दिखाई पड़ता है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो ने 1998 में यह जानकारी दी थी कि 2010 तक महिलाओं के विरुद्ध अपराधों की विकास दर जनसंख्या वृद्धि दर से कहीं ज़्यादा हो जायेगी। पहले बलात्कार और छेड़छाड़ के कई मामलों को इनसे जुड़े सामाजिक कलंक की वजह से पुलिस में दर्ज नहीं कराया जाता था। सरकारी आँकड़े बताते हैं कि महिलाओं के खिलाफ़ दर्ज किये जाने वाले अपराधों की संख्या में नाटकीय वृद्धि हुई है।

1961 में भारत-सरकार ने वैवाहिक व्यवस्थाओं में दहेज की माँग को अवैध करार देने वाला दहेज-निषेध अधिनियम पारित किया। हालाँकि दहेज-संबंधी घरेलू हिंसा, आत्महत्या और हत्या के कई मामले दर्ज किये गये हैं। 1980 के दशक में कई ऐसे मामलों की सूचना दी गयी थी।

1997 की एक रिपोर्ट में यह दावा किया गया था कि दहेज के कारण प्रत्येक वर्ष लगभग 5,000 महिलाओं की मौत हो जाती है और ऐसा माना जाता है कि हर दिन कम से कम एक दर्जन महिलाएँ जान-बूझकर लगाई गयी 'रसोईघर की आग' में जलाकर मार दी जाती हैं। इसके लिए उपयोग किया जाने वाले शब्द हैं- "दुल्हन की आहुति" और स्वयं भारत में इसकी आलोचना की जाती है। शहरी शिक्षित समुदाय के बीच इस तरह के दहेज उत्पीड़न के मामलों में काफी कमी आई है।

भारत में पुरुषों का लिंगानुपात बहुत अधिक है, जिसका मुख्य कारण यह है कि कई लड़कियाँ वयस्क होने से

पहले ही मार दी जाती हैं। भारत के जनजातीय समाज में अन्य सभी जातीय समूहों की तुलना में पुरुषों का लिंगानुपात कम है। ऐसा इस तथ्य के बावजूद है कि आदिवासी समुदायों के पास बहुत अधिक निम्न स्तरीय आमदनी, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएँ मौजूद हैं। इसलिए कई विशेषज्ञों ने यह बताया है कि भारत में पुरुषों का उच्च स्तरीय लिंगानुपात कन्या-शिशु-हत्या और लिंग परीक्षण संबंधी गर्भपातों के लिए जिम्मेदार है।

1990 में महिलाओं के विरुद्ध दर्ज की गयी अपराधों की कुछ संख्या का आधा हिस्सा कार्यस्थल पर छेड़छाड़ और उत्पीड़न से संबंधित था। लड़कियों से छेड़छाड़ के लिए इस्तेमाल की जाने वाली एक चालबाज तरकीब है। कई कार्यकर्ता महिलाओं के खिलाफ यौन-उत्पीड़न की बढ़ती घटनाओं के लिए 'पश्चिमी संस्कृति' के प्रभाव को दोषी ठहराते हैं। विज्ञापनों या प्रकाशनों, लेखनों, पेटिंग्स, चित्रों या किसी और तरीकों से महिलाओं के अश्लील प्रतिनिधित्व को रोकने के लिए 1987 में महिलाओं का अश्लील प्रतिनिधित्व अधिनियम पारित किया गया था। 1997 में एक ऐतिहासिक फैसले में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यस्थल में महिलाओं के यौन उत्पीड़न के खिलाफ एक मजबूत पक्ष लिया। न्यायालय ने शिकायतों से बचने और इसके निवारण के लिए विस्तृत दिशा-निर्देश भी जारी किया। बाद में राष्ट्रीय महिला आयोग ने इन दिशा-निर्देशों को एक आचार-संहिता के योजना जैसे कि - मुख्यमंत्री कन्यादान योजना, गाँव की बेटा योजना, प्रतिभा किरण योजना के रूप में प्रस्तुत किया।

आम धारणा के विपरीत महिलाओं का एक प्रतिशत कामकाजी है। राष्ट्रीय आँकड़ा संग्रहण एजेंसियाँ इस तथ्य को स्वीकार करती हैं कि श्रमिकों के रूप में महिलाओं की भागीदारी को लेकर एक गंभीर अनुमान है। पारिश्रमिक पाने वाली महिला श्रमिकों की भागीदारी को लेकर एक गंभीर न्यूनानुमान है। हालाँकि पारिश्रमिक पाने वाली महिला श्रमिकों की संख्या पुरुषों की तुलना में बहुत ही कम है। शहरी भारत में महिला श्रमिकों की एक बड़ी संख्या मौजूद है। सरकारी स्तर पर महिलाओं के कल्याण के लिए अनेक योजनाएँ बनाई गई हैं जैसे-

**1. मुख्यमंत्री कन्यादान योजना-** मुख्यमंत्री कन्यादान योजना के तहत होने वाले विवाह समारोहों का आयोजन किया गया। इसी कड़ी में करौंद में भी विवाह-समारोह आयोजित किया गया, जिसमें 488 जोड़े परिणय सूत्र में बँधे।

सिर्फ 8 सौ रुपये योजना के तहत विवाह कराने अपने बच्चों को लेकर कई परिजन पहुँचे। योजना के तहत विवाहित दंपति का बीमा कराया जाता है। इस योजना के तहत सिर्फ 8 सौ रुपये इसके लिए जमा कराए जाते हैं, जिससे गरीब परिवारों के लिए भी इसका हिस्सा बनना आसान होता है।

**बेटा को उपहार** -बेटा को उपहार -स्वरूप दो हजार रुपये के बर्तनों सहित कुल पाँच हजार रुपये की गृहस्थी की सामग्री दी जाती है। इससे नवविवाहित जोड़े को अपना नवजीवन प्रारम्भ करना आसान होता है। मुख्यमंत्री की योजना के तहत प्रत्येक स्थान पर तीन सौ से अधिक जोड़े वैवाहिक बंधन में बँधे।

**गाँव की बेटा योजना-** मध्यप्रदेश में निजी महाविद्यालयों की छात्राएँ भी अब गाँव की बेटा योजना का लाभ उठा सकेंगी। 'गाँव की बेटा' का लाभ अब सभी अशासकीय मान्यता प्राप्त महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाली छात्राओं को ही मिलता था। 'गाँव की बेटा' योजना वर्ष 2005 में शुरू की गयी। इस योजना के तहत 12वीं कक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने वाली ग्रामीण क्षेत्र की छात्राओं को लाभ मिलता है। योजना में छात्राओं को आर्थिक तौर पर मदद करने के लिए छात्रवृत्ति दी जाती है। इनमें परम्परागत विषयों में पढ़ने वाली छात्राओं को 500 रुपये और इंजीनियरिंग तथा चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त कर रही छात्राओं को 750 रुपये प्रतिमाह छात्रवृत्ति दी जाती है। वर्ष 2009-10 में 28 हजार 141, वर्ष 2010-11 में 32 हजार 226 और वर्ष

2011-12 में 27 हजार 786 छात्राओं को इस योजना से लाभान्वित किया गया। योजना से लाभ प्राप्त करने वाली छात्राओं में 47.49 प्रतिशत अन्य पिछड़ा वर्ग 35.24 प्रतिशत, सामान्य वर्ग 9.78 प्रतिशत अनुसूचित जाति और 7.49 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति वर्ग की है।

**ikrHk fdj.k ; kt uk-** योजना का उद्देश्य शहरी ग्रामीण रेखा के परिवार की मेधावी छात्राओं को शिक्षा का स्तर बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन स्वरूप आर्थिक सहायता प्रदान करता है। यह लाभ उन छात्राओं को मिलता है जिन्होंने शहर की पाठशाला से 12 वीं कक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की हो। उसे उत्तीर्ण वाले वर्ष में ही उच्च शिक्षा के लिए प्रतिवर्ष 300 रुपये प्रतिमाह 10 माह तक तथा तकनीकी और शिक्षा पाठ्यक्रम के लिए 750 रुपये प्रतिमाह का प्रोत्साहन दिया जाता है। सरकारी स्तर पर शुरू की गई इन योजनाओं के बावजूद स्त्रियों की स्थिति में कोई गुणात्मक परिवर्तन आता नहीं दिखाई दे रहा। परिवर्तन तभी आ पाएगा जब इन योजनाओं के साथ-साथ समाज की चेतना में भी परिवर्तन हो।

पूजा यादव  
बी. ए. प्रोग्राम (तृतीय वर्ष)



## एक अनजान रिश्ता

दुनिया गोल है और इस गोल दुनिया में कुछ रिश्ते खून के होते हैं, तो कुछ अनजान होते हैं। इसी अनजान रिश्ते को हम दोस्ती का नाम देते हैं। दोस्ती ही एक ऐसा रिश्ता है जो दिलों के मिलन से बनता है। ये अनजान रिश्ता अपने आप में बेहद खूबसूरत होता है। रिश्तों के उपवन में दोस्ती सबसे सुन्दर फूल है। जिन्दगी में मित्रता सूर्य के समान हैं जो अपने प्रकाश से जिन्दगी में उजाला कर देती है। दोस्ती का ऐहसास कुछ अलग ही होता है। जिन्दगी में दोस्ती की नहीं जाती, बस हो जाती है। कहते हैं प्रेम का पहला सोपान भी दोस्ती है। ये अनजान रिश्ता जीवन में जो अकेलापन होता है, उसे दूर करता है। ईश्वर की देन है दोस्ती।

ये अनजान रिश्ता दो अजनबियों के बीच शुरू होता है और जब संबंध स्थापित होता है तो दोस्ती के रूप में पनपता है। हमारे जीवन में बहुत से दोस्त बनते हैं लेकिन अंत तक वही दोस्त हमारे साथ रहते हैं जिनसे हमारा मन जुड़ा होता है। दोस्ती एक ऐसा रिश्ता है जिसे अंत तक निभाना कठिन है। इस अनजान रिश्ते के रास्ते में कभी-कभी मुश्किलें भी होती हैं जिन्हें पार करना होता है। ये अनजान रिश्ता दूध और पानी के समान है न कि रेत और पानी के समान, जो क्षण भर में पृथक् हो जाए। मित्रता में स्नेह, त्याग और समर्पण की भावना का होना आवश्यक है।

दोस्त के रहते भला किस बात से घबराना। दोस्ती हमारी ताकत एवं हिम्मत होती है। यादों का सिलसिला दोस्तों के साथ जुड़ा रहता है। दोस्त हमारे जीवन में विशेष स्थान रखते हैं। ये अनजान रिश्ता अंत तक साथ रहता है।

“दोस्ती कभी खास लोगों से नहीं होती  
जिनसे हो जाती है,  
वही लोग खास बन जाते हैं।



निहारिका शर्मा  
बी. ए. हिन्दी विशेष (द्वितीय वर्ष)

## हर चीज़ एक जादू है

हर चीज़ एक जादू है  
तुम खोजो तो सही,  
कड़ाके की ठंड में आग के करीब  
कैसे पूरी हथेली गरम हो जाती है।

हर चीज़ एक जादू है  
तुम खोजो तो सही,  
कैसे कोरे कागज़ पर रंग बिखेरो तो  
पूरी दुनिया रंगीन हो जाती है।

हर चीज़ एक जादू है  
तुम खोजो तो सही,  
कैसे बारिश के मौसम में  
मिट्टी की खुशबू कण-कण में  
भर जाती है।

हर चीज़ एक जादू है  
तुम खोजो तो सही,  
कैसे समुद्र में टकराती लहरें  
अनंत खुशी दे जाती हैं।

हर चीज़ एक जादू है  
तुम खोजो तो सही,  
कैसे बच्चे की मुस्कान देखकर  
एक अनजान शख्सियत मुस्कताती है।

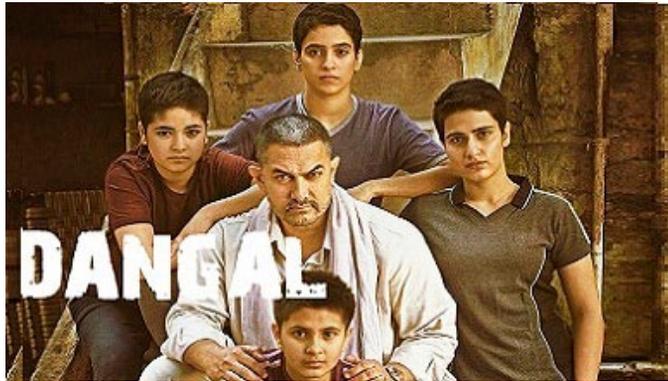
हर चीज़ एक जादू है।  
तुम खोजो तो सही  
सभी नज़रिए की बात,  
जो कोई भी न देख सके  
तो एक नज़र देख पाती है।

कि सभी चीज़ जादू है  
तुम खोजो तो सही।

मेघा  
बी. एल.एड. (द्वितीय वर्ष)

# दंगल

## फिल्म—समीक्षा



दंगल फिल्म जो रिलीज़ होने से पहले ही चर्चा का विषय बनी हुई थी, वह आखिरकार 23 दिसंबर 2016 को रिलीज़ हुई, जिसका निर्देशन नितेश तिवारी ने किया।

फिल्म के कलाकार— आमिर खान, साक्षी तँवर, फ़ातिमा सना शेख, सान्या मल्होत्रा, ज़ायर, वसीम, सुहानी भटनागर।

निर्माता:— सिद्धार्थ रॉय कपूर। आमिर खान

समय— 2 घंटे 49 मिनट

‘दंगल’ कहानी हरियाणा के एक छोटे से गाँव रोहतक के भूतपूर्व रेसलिंग चैंपियन महावीर सिंह फोगाट (आमिर खान) की है। उनकी शादी दया शोभा कौर (साक्षी तवर) से होती है। महावीर का एक ही सपना है, भारत के लिए स्वर्ण—पदक जीतने का, लेकिन आर्थिक तंगी की वजह से महावीर को पहलवानी छोड़ नौकरी करनी पड़ती है। फिर भी भारत के लिए स्वर्ण—पदक का सपना उनके दिल में ज़िंदा रहता है, स्वर्ण—पदक को हासिल करना वो अपनी ज़िद बना लेता है। महावीर अपना यह सपना अपने बेटों के जरिये पूरा करना चाहता है, लेकिन चार लड़कियाँ होने पर वह पूर्ण रूप से निराश हो जाता है और अपने सपनों को पेट में बंद कर देता है। लेकिन एक दिन उनकी बेटियाँ गीता और बबीता पड़ोस के लड़कों द्वारा छेड़े जाने पर उन लड़कों की बुरी तरह पिटाई कर देती हैं। यह देखकर महावीर में एक नई उम्मीद जागती है और वह कहता है “म्हारी छोरियाँ छोरों से कम हैं कै?” हरियाणा के छोटे से गाँव का निवासी महावीर अपनी बेटी गीता और बबीता को दृढ़ निश्चय होकर पहलवानी सिखाने का साहसिक फैसला लेता हुआ एक नई सोच को उजागर करता है। हरियाणा जहाँ छोरियों को छोरों से कमतर ही माना जाता है। महावीर, समाज में व्याप्त इस मानसिकता को तोड़ता है। बेटियों को पहलवानी सिखाने के फैसले को लेकर महावीर और उसके परिवार को गाँव द्वारा किए जा रहे अपमान खिल्ली और हंसी का पात्र बनना पड़ता है, लेकिन वह फिर भी अपने फैसले पर अडिग रहता है और बेटियों को चैंपियन बनाकर ही दम लेता है।

इस फिल्म के कई रंग हैं। एक ओर जहाँ लड़कियों के प्रति समाज की सोच एवं रूढ़िवादी परंपराएँ हैं, वहीं दूसरी ओर लड़कियों में कुछ कर गुजरने की तमन्ना, अखाड़े और अखाड़े से बाहर के दाँव—पेच, चैंपियन बनने के लिए ज़रूरी अनुशासन और समर्पण जैसी तमाम बातें फिल्म में समेटी गई हैं। फिल्म की शुरुआत ही इतने बेहतरीन ढंग से हुई है कि वह दर्शक को बाँधे रखने में सक्षम है। फिल्म इंटरवल तक इतनी तेज़ गति से भागती है कि दर्शकों की साँसें थम जाती हैं। दर्शकों में निरंतर जिज्ञासा बनी रहती है। आगे क्या होगा? फिल्म में दृश्य खट—खट बनते जाते हैं, चाहे वो लड़के पैदा होने के टोटके हों, बच्चियों को पहलवानी का प्रशिक्षण देने के दृश्य हों, पिता की सख्ती हो आदि सभी दृश्य इतने बेहतरीन ढंग से गूँथे गए हैं कि दर्शक उसके साथ बहता चला जाता है। फिल्म के कई दृश्य जहाँ आँखों को नम कर देते हैं। वहीं इमोशन से भरपूर हरियाणवी संवाद हँसी और खुशी के सामंजस्य को बना कर रखते हैं। जैसे महावीर द्वारा कहा गया यह कथन “अपनी मिट्टी

की हमेशा इज्जत करना क्योंकि जितनी इज्जत तुम माटी की करोगे उतनी ही इज्जत माटी से तुम्हें मिलेगी। “यह डायलॉग दर्शक को गर्व से भर देता है। उल्लास से आनंदित कर देता है।

दंगल में व्याप्त पात्र चाहे वो आमिर खान हो, सान्या मल्होत्रा, जायरा वसीम हो, सुहानी भटनागर हो या फातिमा सना शेख हो, सभी ने अपने किरदार को बखूबी निभाया है। आमिर खान ने महावीर फोगाट के रूप में बेटियों के पिता बनने का किरदार बेहतरीन ढंग से निभाया है, बेटियों के किरदार में फातिमा सना शेख (गीता) ने प्रशंसनीय अभिनय किया है, सान्या मल्होत्रा (युवा बबीता) ने फातिमा सनाशेख (गीता) का अच्छा साथ निभाया है। साक्षी तँवर भी फिल्म में समय-समय पर अपनी मौजूदगी का अहसास कराती है।

फ़िल्म का दूसरा दृश्य स्टेडियम का है। यहाँ पहुँचकर यह फिल्म एक स्पोर्ट्स फिल्म बन जाती है, लेकिन यह अन्य स्पोर्ट्स फिल्मों की तरह ऊबाऊपन का अहसास नहीं कराती। फिल्म में स्टेडियम में रेसलिंग के लंबे-लंबे सीन हैं, जो दर्शकों को रेसलिंग के दौंव-पेंच को समझा सकने में सक्षम हैं। यहाँ फिल्म अत्यंत रोचक प्रतीत होती है तथा साथ ही लगता है, हम स्टेडियम के भीतर बैठे हुए हैं। युवा गीता के रूप में फातिमा सना शेख ने इतने बेहतरीन ढंग से किरदार निभाया है कि लगता है कि वह असल रूप में कुश्ती कर रही है। फिल्म में कहीं भी नकलीपन का अहसास नहीं होता।

फ़िल्म में खेल के अतिरिक्त यह बात भी ज़ोरदार तरीके से दिखाई गई है कि छोटे से गाँव से निकल कर शहर की चमक-दमक किस तरह खिलाड़ी का ध्यान भंग कर सकती है। यहाँ पर बाप और बेटी के द्वंद को भी दिखाया गया है। गीता का नया कोच महावीर के प्रशिक्षण को खारिज कर देता है और गीता उसकी बातों में आ जाती है। पिता-पुत्री के बीच कुश्ती का मैच फिल्म का शिखर-बिंदु है। फिल्म में स्टेडियम में जन-गण जब बजता है तो दर्शक राष्ट्रप्रेम की भावना से ओतप्रोत होकर स्वतः ही सम्मान में खड़ा हो जाता है।

फ़िल्म के अंत में फोगाट अपनी बेटी गीता के जीतने पर ‘साबास’ कहता है और दर्शकों की आँखें नम हो जाती हैं तथा हृदय उल्लास से भर जाता है।

फ़िल्म में प्रयुक्त गीत-संगीत को प्रीतम और अमिताभ भट्टाचार्य ने इस प्रकार सजाया है कि वे सटीक बैठते हैं, जैसे ‘बापू सेहत के लिए हानिकारक है।’ आदि—

‘दंगल’ जितनी प्रेरणादायक है, उतनी ही मनोरंजक भी है। यह फिल्म उन वर्जनाओं को तोड़ती है, जो कहते हैं कि— पुरुषों के खेल में महिलाओं की हिस्सेदारी नहीं होती। यह फिल्म कुश्ती में लड़कियों को आगे बढ़ाने की प्रेरणा देती है।

पितृसत्तात्मक समाज जहाँ हमेशा से ही स्त्रियों को उपेक्षित एवम् हीन दृष्टि से देखा जाता था, स्त्रियों का जीवन केवल घर की चार दीवारी तक सीमित था। यह फिल्म पितृसत्तात्मक समाज की इस मानसिकता पर गहरी चोट करते हुए महिला सशक्तिकरण को प्रोत्साहन देती है। फिल्म में गीता ने पितृसत्तात्मक समाज की इस अवधारणा को तोड़ते हुए यह सिद्ध किया कि घर की चारदीवारी के बाहर भी वह अपना अस्तित्व बनाने में सक्षम है।

अंकिता  
एम. ए. पूर्वार्ध हिन्दी

## चाँद का टुकड़ा

अल्मोड़ा हरे-भरे पहाड़ों से घिरा एक बेइतहा खूबसूरत कस्बा है। इस कस्बे के ही रहने वाले हैं अली कादरी, जो पेशे से एक बढ़ई हैं। शहीद चौक के बाईं ओर जो बड़ा-सा नीम का पेड़ है, उस की सीध में ही है उनका घर, जहाँ वह अपनी बीबी व बच्चों की सोहबत में सुकून का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनके सबसे छोटे साहबजादे हैं हामिद मियाँ जो कुल पाँच बरस के हैं। हामिद की सबसे बड़ी बहन है नूरा बाजी जो हामिद को बेहद प्यार करती है। वह कस्बे के हाई स्कूल में गणित पढ़ाती है। नूरा के बाद आजम, नीलोफ़र और आमिर को मिलाकर हामिद के चार भाई-बहन हैं। नीलोफ़र और आमिर हामिद के साथ स्कूल पढ़ने जाते हैं। यूँ तो नीलोफ़र हामिद से आठ बरस बड़ी है, फिर भी हामिद उसे केवल नीलू कह पुकारता है। जिस से दोनों के बीच खूब झड़प होती है। हामिद को अम्मी के हाथों से खाना, आमिर के साथ खेलना, नीलू को चिढ़ाना, आजम भाई के बाल बिगाड़ना खूब भाता है। लेकिन सब से ज्यादा मज़ा उसे आता है नूरा बाजी से कहानी सुनने में। उनके बिना मियाँ सो नहीं सकते।

जाड़े के एक इतवार की बात रही होगी, जब नूरा को देखने नसीम मिर्ज़ा का परिवार हामिद के यहाँ आया। जल्द ही नूरा व नसीम के निकाह की तैयारियाँ होने लगीं। हामिद को जब खूब जुगत लगाने पर भी निकाह का माइने नहीं समझ आया तो उसने नीलू से पूछा। नीलू ने उसे समझाया कि निकाह के बाद बाजी नसीम मिर्ज़ा के घर चली जाएँगी।

“लेकिन क्यों” हामिद ने रोनी सूरत बनाकर पूछा। क्योंकि ऐसी ही होता है पिद्दी मियाँ। उन लोगों ने देखते ही बाजी को पसंद किया, अब उनका निकाह होगा और फिर वहीं उनका घर होगा। नीलू ने कहा परंतु हामिद के बात कुछ पल्ले नहीं पड़ी। उसने अम्मी से पूछने की सोची।

“अम्मी! उन्होंने बाजी को पसंद क्यों किया? और इतना पसंद कि वे लोग बाजी को ले जा रहे हैं?” “अरे! तो क्यों न करते पसंद, नूरा है ही चाँद का टुकड़ा।”

हामिद की जैसे दुनिया की बदल गई। उसको बाजी का अपने से दूर होना मंजूर नहीं था। उसका सभी कामों से मन हट गया। यहाँ तक कि खुद नूरा भी उसे मनाने में नाकाम रही।

एक दिन आजम भाई के साथ खाना खाते-खाते हामिद का चेहरा खिल पड़ा। उसे एक तरकीब जो सूझी थी। उसके गतिहीन कदमों में बिज़ली कौंध पड़ी। उस रात, हामिद एकटक चाँद को निहारता रहा। उसने सोचा अगर बाजी चाँद का एक टुकड़ा है तो क्यों न चाँद से ही एक छोटा सा टुकड़ा माँग लिया जाए, जिस से कि नूरा बाजी निकाह के बाद भी उसके पास रह सके। बस अब चाँद की मेहरबानी की देरी थी। नूरा से ही एक बार उसने सीखा था कि दिल से माँगने पर बड़ी से बड़ी चीज़ भी मिल जाती है, सो उसने खूब दिलो जान से चाँद से मिन्नतें कीं। यहाँ तक कि उसने अपनी हर हपते मिलने वाली चॉकलेट को भी आधा-आधा बाँटने का सुझाव भी चाँद के सामने रख दिया। चाँद ठहरा, ऐसे कहाँ मानने वाला था। एक रोज़ हामिद, रात के वक्त आमिर को ले मंदिर के पीछे वाले तालाब पर जा पहुँचा। दोनों ने बड़े ज़तन से एक रस्सी से चाँद को तालाब से बाहर निकालने की न जाने कितनी कोशिशें कीं। जब कुछ बनता न दिखा तो दोनों थके कदमों से घर की ओर चल पड़े। हामिद एक बार फिर खासा उदास हो गया। उसके इस हाल ने सब को बेचैन कर दिया। नूरा ने आखिरकार ठान लिया कि वो हामिद को उसका चाँद का टुकड़ा दिला कर रहेगी। उसको एक तरकीब सूझी।

नूरा ने रसोईघर से मोटे काँच का एक डिब्बा लिया व बाज़ार से अँधेरे में चमकने वाला रंग खरीद लाई। उसने बड़े सलीके से व हामिद की नज़रों से छिपाकर उस डिब्बे को अंदर से रंग दिया। उस रात उसने जब हामिद को वह डिब्बा दिया तो हामिद चौंक कर रह गया, उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। उसके पूछने पर नूरा ने कहा, “मैंने चाँद को बहुत डाँट लगाई, कहा भला इतने मासूम—नन्हें बच्चे को ऐसे परेशान करता है कोई?”

“फिर?”

“फिर क्या? चाँद ने सिर्फ़ तुम्हारे वास्ते ये छोटा सा टुकड़ा मुझे दे दिया।” हामिद की आँखें उस रात, सितारों से भी तेज़ टिमटिमा रही थीं। वह चाँद के कौद टुकड़े को अपने हाथ में पकड़े फूला नहीं समा रहा था। उस रात हामिद मियाँ बहुत दिनों बाद मुस्कराते हुए सोए।

कनिका यादव

## पिता

मेरी इज़्जत, मेरी शोहरत, मेरा रुतबा,  
मेरा मान हैं मेरे पिता।  
मेरी हिम्मत को बढ़ावा देने वाले,  
परमात्मा सम रूप हैं मेरे पिता।।  
बचपन में अंगुली पकड़ कर चलवाने वाले  
गलती पर समझाने वाले,  
पथ—प्रदर्शक हैं मेरे पिता।  
जीवन जीने का सलीका सिखाने वाले  
एक जीवंत कहानी हैं मेरे पिता।।  
गिरने पर हँसकर उठने की सलाह देने वाले  
खुली किताब हैं मेरे पिता।।  
खुद मुसीबतों से लड़ जाने वाले  
मुझे महफूज़ रखने वाले  
एक अमर तत्त्व हैं मेरे पिता।।  
मेरे कहे बिन सब कुछ समझ जाने वाले,  
अंतर्यामी सम हैं मेरे पिता।।  
सारी खुशियाँ मेरी झोली में भरने वाले  
वो रब सरीखे हैं मेरे पिता।  
प्रभु की परछाई हैं मेरे पिता  
मेरे जीवन के आदर्श हैं मेरे पिता।।



हर्षिता मंगल  
बी. ए. प्रोग्राम (प्रथम वर्ष)

## कहाँ तो तय था चिरागाँ

दुष्यंत कुमार साठोत्तरी कविता के मुख्य हस्ताक्षर हैं। यह युग सच्चाईयों अर्थात् वास्तविकता को साहित्य में प्रस्तुत करता है। मोहभंग के बाद भी मोहग्रस्त स्थिति को तोड़ने के प्रयास करती हुई साठोत्तरी कविता शोषकों, लुटेरों राजनीतिक कुचक्र से भीड़ रूपी जनता को सचेत करती है। प्रजातंत्र की दयनीय असलफता के लिए वह सामंती चरित्रों को जिम्मेदार ठहराती है। दूसरी ओर शोषित, पीड़ित समाज से अपना सरोकार जोड़ती है।

दुष्यंत कुमार ने अपनी गज़लों के माध्यम से साठोत्तरी सामाजिक और राजनीतिक स्थिति को अंकित किया है। इन गज़लों में दुष्यंत कुमार ने उन सवालियों को उठाया है, जो आम जन को परेशान किये हुए हैं और इन जन-प्रश्नों से एक रचनाकार के तौर पर खुद दुष्यंत कुमार भी जूझ रहे थे। समाज में व्याप्त पीड़ा, जनता की परेशानियाँ उनकी गज़लों के माध्यम से उभर कर आई हैं।

गज़ल उर्दू काव्य का सबसे लोकप्रिय रूप है। यह फ़ारसी की एक लोकप्रिय विधा है। अरबी भाषा का शब्द गज़ल स्त्री लिंग शब्द है। इसका अर्थ है—प्रेमिका से बातें करना या नारियों के प्रेम की बातें करना।

परंतु ऐसा नहीं है कि गज़ल प्रेम-निवेदन तक सीमित रही। इसका एक सशक्त उदाहरण दुष्यंतकुमार हैं। उन्होंने सामान्य जन की परेशानी पीड़ा, कुंठा, निराशा, घुटन इसके अतिरिक्त उसके सपने एवं इच्छाएँ राजनीति का दो मुँहापन इत्यादि विषय अपनी गज़लों में उठाए, जो उनसे पहले गज़ल के विषय माने ही नहीं जाते थे।

उनका प्रगतिशील नज़रिया अभिजात के सुविधावाद को नकारता रहा। आम आदमी परेशान है। तकलीफ़ में है। उसकी तकलीफ़ की वजह की तरफ़ दुष्यंत ने साफ़ इशारा किया।

“ये सारा जिस्म झुककर बोझ से दुहरा हुआ होगा।

मैं सजदे में नहीं था, आपको धोखा हुआ होगा।।

अभिजन हमेशा बहुजन से छल करता है। इसे समझने की जरूरत है—

“ये रोशनी है हकीकत में एक छल, लोगों

कि जैसे जल में झलकता हुआ महल, लोगों।।”

दुष्यंत कुमार ने अपने वक्त के महत्वपूर्ण सवाल अपनी गज़लों में उठाए। एक शायर के रूप में उन्होंने हर बार अपनी “कंडिशनिंग” को तोड़ा, यहाँ तक कि उन्होंने अपने तजुरबे से गज़ल कहने के अंदाज़ को बदलने का जोखिम उठाया। उन्होंने अपने व्यक्ति और रचनाकार दायित्व को निभाते हुए अनुभूति की प्रामाणिकता को आधार बनाया है। वे अनुभव वास्तव की अभिव्यक्ति के लिए हैं—

“मैं जिसे ओढ़ता—बिछाता हूँ

वो गज़ल आपको सुनाता हूँ।।”

दुष्यंतकुमार का व्यक्तित्व करोड़ों मूक जनता की संवेदना से युक्त है। अतः वह व्यवस्था के विरुद्ध अपनी बात कहते हैं। जनसेवा के नाम पर जनता से मतदान माँगने वाला नेतृत्व अपनी मनमानी करता रहा। जिस नेतृत्व पर विश्वास कर जनता निश्चित रही, उसी आधार—वृक्ष में बेकारी, भूखमरी, गरीबी, भ्रष्टाचार की धूप पीड़ा देने लगी। जनता की वेदना, निराशा चरम पर पहुँची।

“यहाँ दरख्तों के साए में धूप लगती है  
चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए।”

भारत में हजारों वर्षों की सत्य की परंपरा राज व्यवस्था द्वारा पोषित रही। सत्ता ने अपनी निरंकुशता और अन्याय का सहारा लिया तथा जनता, जिम्मेदार लोग गूँगे-बहरे बने बैठे रहे। भारत की सत्य, न्याय और साहस की परंपरा पर प्रश्न-चिह्न लगने लगे-

“यहाँ तो सिर्फ गूँगे और बहरे लोग बसते हैं,  
खुदा जाने यहाँ पर किस तरह जलसा हुआ होगा।।”

आपातकालीन दमन और अन्याय की स्थिति का इस रचनाकार ने खुल कर विरोध किया है। दमन करना सत्ता की आदत बनी और सहना जनता की। उस समय दमन की ऐसी भयानक नीति प्रयोग की गई कि बड़े से बड़ा पत्रकार बुद्धिजीवी, लेखक, कवि या तो दबकर मूक बना रहा या भाट बनकर स्वार्थ-भोगी बना। परंतु एक संघर्षशील व्यक्ति और प्रतिबद्ध रचनाकार व्यवस्था के आतंक के विरुद्ध चुप कैसे रहता? रचनाकार अकेला नहीं होता, वह करोड़ों लोगों का प्रतिनिधि होता है-

“मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही  
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।।”

दुष्यंतकुमार ने अपनी गज़लों में व्यवस्था की स्थिति को वास्तविक रूप में चित्रित किया है। स्वतंत्रता-आंदोलन की लंबी और त्यागपूर्ण लड़ाई के बाद देश में अपना राज वाली जनता की मानसिकता थी। परंतु प्रजातंत्र से बँधी आस धीरे-धीरे खत्म होने लगी। देश की उन्नति से आस बँधाए विकास के सपने झूठे पड़ने लगे। नेतृत्व से बँधे जन को स्वप्न और अनुभूत सत्य में अंतर स्पष्टतः दिखने लगा।

दुष्यंत अपनी गज़लों में अमानवीय और पतित व्यवस्था का विरोध वैयक्तिक स्तर पर नहीं करते अपितु समाज से जुड़कर वे जनता जनार्दन से सत्ता-परिवर्तन की अपील करते हैं। यहाँ वे हमें इस दौर के ‘कबीर’ दिखाई पड़ते हैं, जो बिना लाग लपेट और निर्भीक मानसिकता के साथ व्यवस्था-बदलाव के लिए क्रांति-बिगुल बजाते हैं। अपने युगीन दमनकारी इंदिरा-शासन के विरुद्ध दुष्यंतकुमार अपनी गज़लों में विद्रोह की आग लिखते रहे-

“ये जुबाँ हमसे सी नहीं जाती  
जिंदगी है कि जी नहीं जाती।।”

स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक परिवेश में देश और जनता की स्थिति कैसे बद से बदतर हुई, उस पीड़ा, अभावग्रस्तता, विवशता का वर्णन किया है, और इन सब को गज़लों के माध्यम से जनता की स्थितियों को, जो बता सके उस पीड़ा को वाणी दी है-

“यातनाओं के अंधेरे में सफ़र होता है।”

और

“यारों तरफ़ खराब यहाँ और भी खराब।।”

उन्होंने जनता की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी। उनको गज़लों का विषय बनाया। यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में स्वार्थी, अराजक तत्वों ने लूट के लिए देशभक्ति और जनसेवा का चोला ओढ़ा। शासन की ओर से जनता के लाभ और देश के विकास की योजनाएँ बनती तो हैं, परंतु उन योजनाओं का लाभ अपने उद्देश्य तक पहुँचते-पहुँचते विरल हो जाता है। कवि ने योजनाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार को उसके जाल और

परिणाम को इस प्रकार व्यक्त किया है।

“यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं, कई नदियाँ,  
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।।”

भ्रष्ट व्यवस्था केवल नेतृत्व स्तर पर नहीं, उसका प्रभाव हर क्षेत्र में देखा जा सकता है। स्वतंत्रता के आनंद में झूमते देशवासी को स्वातंत्र्योत्तर स्वदेशी नेतृत्व द्वारा शोषण, अनाचार, भ्रष्टाचार ने रोने-चिल्लाने की स्थिति में ला खड़ा किया है। शायर साठोत्तरी परिवेश में नेतृत्व की लापरवाही को बदलने की आवश्यकता पर जोर देते हैं। समाज को संघर्ष करने की प्रेरणा देते हैं।

उच्च और निम्न वर्ग की आर्थिक खाई स्वतंत्र भारत में निरंतर बढ़ती गई। हर चुनाव में इस खाई में विस्तार ही होता जाता है। स्वाधीनता से देश में प्रजातंत्रीय व्यवस्था लागू हुई। देश के लिए बनाए संविधान को जनता बड़े विश्वास के साथ मानती रही परंतु वे मात्र कानूनी पुस्तक के लिखे ऐतिहासिक अक्षर बनकर रहे—

“सामान कुछ नहीं है फटेहाल है मगर  
झोले में उसके पास कोई संविधान है।”

दुष्यंतकुमार ने आर्थिक विषमता को भी बड़ी ही सजीवता से अपनी गजलों में प्रस्तुत किया है। समाज में एक वर्ग, अपरिमित साधनों का भोक्ता है तो दूसरा वर्ग रोटी के लिए चिंतित है। राजनीतिक दलों ने जनता की मूलभूत आवश्यकताओं को तो पूरा भी नहीं किया और चुनाव के समय उनको तमाम झूठे सपने दिखाए गए, बिजली, पानी, सड़क के वायदे किए गए।

इस पर भी दुष्यंतकुमार ने लिखा है—

“कहाँ तो तय था चिरागों हर-हर घर के लिए  
कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर भर के लिए।।”

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की आर्थिक विषमता को दुष्यंत कुमार ने प्रभावशाली रूप से दर्शाया है कि गजलों को सुनकर उस समय की स्थितियों का पता चल जाता है कि स्थितियाँ कितनी खराब हो चुकी हैं कि अब जनता मुनासिब हो चुकी है—

“ न हो कमीज तो पाँवों से पेट ढक लेंगे  
ये लोग कितने मुनासिब है, इस सफ़र के लिए।।”

दुष्यंत कुमार ने समाज के लिए उसके विकास के लिए बुद्धिजीवी वर्ग की भूमिका को भी महत्वपूर्ण माना है। बुद्धिजीवी का धर्म है कि वह उचित का साथ दे, भटके हुए लोगों का मार्गदर्शन करे। परंतु आपातकालीन जैसी स्थितियों में ये सत्य के पक्षधर सत्य कह नहीं पाते। उनकी भयभीत अवस्था पर वे लिखते हैं—

“गज़ब ये है कि मौत की आहट नहीं सुनते।।”

जीवन के अनेक पहलुओं पर भी दुष्यंतकुमार ने गजलें लिखी हैं।

दुष्यंतकुमार ने काव्य में वेदना को स्वीकारा है। उनकी उस वेदनाभिव्यक्ति के केन्द्र में साधारण जन और परिवेश की पीड़ा एवं त्रासदी है। सामाजिक संदर्भों से निर्मित समस्या और वेदना को दुष्यंतकुमार की गजलों में प्रथम स्थान मिला है। उनकी गजलों में व्यक्त वेदना स्वातंत्र्योत्तर निष्क्रिय अन्यायी राजनीतिक परिवेश की उपज है। आज़ादी मिली, वो समय रात का था। हर बार स्वतंत्रता दिवस मनाए जाते हैं। परंतु जनता के लिए आज़ादी

एक झूठ सिद्ध हुई। इस देश में जनता के सपनों के लिए अब कोई स्थान नहीं हैं। वास्तव में आम जीवन में अभाव पीड़ा इतनी है कि जनता पीड़ाग्रस्त पुतली मात्र रह गई है।

परंतु परिवेश में चाहे जितना दमन और अन्याय व्याप्त हो, सजग रचनाकार संघर्ष के लिए उकसाता है। संघर्ष करने के लिए प्रेरित करता है, उनको साहस देता है। उन्हें अपनी जनता की क्षमता पर विश्वास है—

“वे मुतमुईन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकता  
मैं बेकरार हूँ आवाज़ में असर के लिए।।”

दुष्यंतकुमार ने केवल साठोत्तरी परिवेश की स्थितियों राजनीतिक, आर्थिक विषमता का वर्णन ही नहीं किया, अपितु अपनी गज़लों से जन की चेतना को झकझोरने और संघर्ष करने की प्रेरणा दी।

दुष्यंतकुमार ने हिंदी गज़ल को नई दिशा दी और अपनी गज़लों में आम आदमी की पीड़ा अभाव, उनकी घुटन उनकी इच्छाएँ और सपनों को स्थान दिया।

ऐसे विषय अपनी गज़लों में उठाए, जो उनसे पहले गज़ल के विषय माने ही नहीं जाते थे। जनता की पीड़ा से लेकर राजनीति की दोहरी चालों, नई सभ्यता की चमक-दमक के खोखलेपन को अपनी गज़लों में उजागर किया।

दुष्यंतकुमार की गज़लों की लोकप्रियता का भी यही कारण है कि ये गज़लें जन-जन को अपनी वेदना प्रस्तुति लगती हैं। दुष्यंतकुमार की व्यष्टि पीड़ा, अनुभव जनता के साथ जुड़ते हुए दिखते हैं। उनकी यह व्यष्टि पीड़ा गज़लों में समष्टिगत हो जाती है।

‘साए में धूप’ की गज़लों में उनका प्रभाव देखा जा सकता है। वो न केवल पीड़ा की अभिव्यक्ति करते हैं, अपितु आम जनता को संघर्ष करने के लिए प्रेरित करते हैं, उनकी सोई हुई चेतना को जगाने का काम करते हैं—

“मेशी जुबान से निकली तो सिर्फ नज़्म बनी  
तुम्हारे हाथ में आई तो एक मशाल हुई।।”

अतः यह सिद्ध हो जाता है कि दुष्यंतकुमार ने गज़ल के शिल्प को साधा ही नहीं, बल्कि उसकी अंतर्वस्तु में भी आमूलचूल परिवर्तन कर गज़ल को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया है।



सुधा  
हिन्दी विशेष (तृतीय वर्ष)

## नशा : नाश की जड़

आज महीने का आखिरी दिन है। बच्चे खुशी से उछल-कूद रहे हैं। आज के ही दिन रामलाल अपने बच्चों के लिए कुछ खास लेकर आता है। राहुल और मीना को खुश देखकर सुनीता भी खुश हो रही है और कुछ सहमी हुई भी है। पिछले कुछ सप्ताह से रामलाल के साथ उसकी छोटी-मोटी बहस हो रही है, लेकिन कल रात तो हद ही हो गई थी। रात के डेढ़ बजने वाले हैं। रामलाल अभी तक नहीं आया। बच्चे प्रतीक्षा में थे। अधिक रात होने के कारण वे रात का भोजन करके सो गए थे। सुनीता का मन अजीब-अजीब शब्द बुनने लगा था। रात भी अधिक हो चुकी थी। उसकी आँख लगने ही वाली थी, कि अचानक दरवाज़ा खटखटाने की आहट हुई। पहले तो वह सहम गई। कुछ देर एकटक खड़ी होकर उसने दरवाज़ा खोला। सामने रामलाल की हालत देखकर वह हक्की-बक्की रह गई। बदन पर अधफटे कपड़े, हाथ में शराब की बोतल और सूजी हुई लाल-लाल आँखें मानो, वह भर आई हों। धैर्य धारण करके उसने रामलाल से पूछा-‘ये सब क्या है?’ आपने अपनी ऐसी हालत क्यों बना रखी है? रामलाल ने अपनी पत्नी की बातों को अनसुना कर कमरे की ओर रुख किया।

कमरे में जाकर उसने सामान को इधर-उधर फेंकना शुरू कर दिया। सुनीता को यह असह्य लग रहा था, पर बेचारी करती भी क्या?

अगले दिन रामलाल दोपहर तक सोता ही रहा। बच्चे सुबह ही अपने-अपने स्कूल चले गए थे। सुनीता भी अपने दैनिक कार्यों में लगी हुई थी। इस बीच वह अपने सुखद लम्हों को याद कर रही थी। अपने हँसते-खेलते परिवार को, जो पूर्णतः बदल गया है। तभी अचानक उसने रामलाल के चीखने की आवाज़ सुनी। जब तक वह कमरे में जाती, तब तक आस-पड़ोस के लोग दरवाज़े पर इकट्ठा हो गए थे। सुनीता को कुछ समझ ही नहीं आ रहा था, कि वह करे तो क्या करे?

फिर, एक पड़ोसी ने पूछा- “घर में आजकल क्या हो रहा है? रोज़ रात में झगड़ने की आवाज़ आती है और अब रामलाल चिल्ला क्यों रहा है? स्वर में एक प्रकार की बेचैनी का भाव था। सुनीता ने बात को संभालते हुए कहा कि कुछ नहीं हुआ है। आप लोग बेवज़ह चिंता न करें। बाद में पता चला कि रामलाल ने अपनी घड़ी और तनख़्वाह कहीं छोड़ दी है।

सुनीता को समझते देर न लगी कि सामान कहीं छूटा नहीं है। बल्कि नशे की हालत में किसी ने रामलाल से छीन लिया है। इस महीने उन्हें आर्थिक दिक्कतों का सामना करना पड़ा। समय बदला, साल भी बदला। रामलाल का बर्ताव बद से बदतर हो चुका था। सुनीता भी अब अपनी वास्तविक आयु से दुगुनी दिखने लगी थी। बेटा, अपनी बाप की राह पर निकल पड़ा था। चौबीसों घंटे वह भी नशे में धुत रहने लगा था। घर खर्च के सभी स्रोत लगभग समाप्त हो गए थे। एकमात्र मीना ही सिलाई करके घर का खर्च चलाती थी, लेकिन शादी के बाद वह भी अपने घर चली गई थी। अब तो खाने तक के लाले पड़ गए थे। शराब न मिलने की हालत में रामलाल अपनी पत्नी को पीटने भी लगा था। अब तो सुनीता को इन सब की आदत-सी पड़ गई थी। कई रातों तो उसने उपवास रखकर बिताई थीं। आस-पड़ोस के लोग बेचारी सुनीता की हालत देखकर तरस करते थे। कभी-कभार खाने के लिए भी दे जाते थे। उसकी हालत भी पस्त हो गई थी।

पर कहते हैं न कि जिसकी शुरुआत होती है, उसका अंत भी होता है। रामलाल बीमार रहने लगा था। राहुल भी पिछले कुछ महीनों से किसी जुर्म में जेल में बंद है। बेचारी सुनीता काल का ग्रास बन गई। अब घर में

इकलौता रामलाल ही बचा था। दवा-दारू का तो कोई नाम ही नहीं। अब उसकी हालत आवारा इंसान की भाँति हो गई थी। न उसके चलने का ठिकाना था और न ही उसके रहने का कोई ठिकाना। गली के बच्चों के लिए वह मज़ाक का पात्र बन गया था। वह जिस भी गली से गुजरता था, वहाँ के बच्चे 'शराबी', 'शराबी'.. कहकर पत्थर मारकर उसे भगा देते थे। अब तो उसका बाहर चलना भी दूभर हो गया था। सप्ताह तक उसे उपवास करना पड़ जाता था। एक दिन अचानक उसकी तबीयत बहुत बिगड़ गई। साँस लेने में भी दिक्कत हो रही थी। पता चला कि उसके अंग काम नहीं कर रहे हैं। उसने अपने अंतिम समय को निकट पाया। वह सोचने लगा-काश! मैंने नशे का नहीं, परिवार का साथ दिया होता, तो आज मेरा सुखद अंत होता। मैं एक सुखी परिवार, एक सुशील पत्नी और अपने प्यारे बच्चों की अहमियत नहीं समझ पाया। हे भगवान्! मुझे मुक्ति दो, मुक्ति दो....।”

रामलाल की आँखों के सामने सुनीता की रोती-बिलखती यादें आने लगी। वह अब बेबस-लाचारों की भाँति बिलखने लगा। पर अब पछताय होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।

किसी भी पड़ोसी ने रामलाल की सुध लेने की जुर्रत नहीं की। सभी आपस में कह रहे थे-“बुरे का अंत भी बुरा ही होता है।” रामलाल की आँखों के सामने घना अँधेरा छा गया और जाते-जाते उसके मुँह से अंतिम शब्द निकले...“नशा, नाश की जड़ है।”

ललिता  
हिंदी विशेष (द्वितीय वर्ष)

## माँ

घने धूप में बरगद के समान जो छाया प्रदान करे  
अँधेरी रातों में भी जो रोशनी का दिया बन कर जले,  
हर चोट को अपने ममत्व से जो सहलाए  
लड़खड़ाते कदमों को अपनी उँगलियों का सहारा जो दे,  
हर आँसू को जो पी जाए आए और चेहरे को फिर भी मुस्कराहट से सजाए रखे  
जो हमारे जख्मों को देखकर तिलमिला उठे,  
वो प्रतीक है दया की मूरत का  
वो प्रतीक है बेशर्त मोहब्बत का,  
वो तो एक बाती के समान है जो खुद जलकर अपने बच्चों के जीवन को प्रकाशित करती है।  
धरती पर खुदा की परछाई है वो, वो महज सिर्फ एक लफ्ज नहीं है,  
वो तो एक ऐहसास है  
इस जीवन को मिला वरदान है वो,  
बच्चे की पहली आहट की गवाह है वो  
हर धड़कन में बसी, हर अल्फाज में रमी,  
खुदा की सब से प्यारी देन है वो  
सरलता से कहूँ तो माँ है वो।

मानसी कपूर  
बी. एस. सी. लाइफ़ साइंस (द्वितीय वर्ष)

## सफ़र उन चौदह सालों का

“ये यादें जब भी दस्तक देती हैं, होठों पर मुस्कान, आँखों को नम कर देती हैं।”

ज़िन्दगी चलती रही और वो चौदह साल न जाने कब निकल गए। नन्हे-नन्हे कदमों से पहली बार उस दुनिया में कदम रखा था। मेरे जीवन का जो अहम् हिस्सा बना, वो था मेरा विद्यालय सेंट एन्थोनी जूनियर कॉलेज। लाल रंग की चेक वाली फ्रॉक पहन कर जब उस दुनिया में प्रवेश किया तो उस दुनिया के लोगों से मैं बिल्कुल अनजान थी। वही अनजान लोग कब अपने लगने लगे, पता ही नहीं चला। अध्यापिका द्वारा सिखाई गई गिनतियाँ या ए.बी.सी.डी आज तक याद हैं। समय अपनी गति से चलता रहा। मैं छोटी कक्षाओं में थी तो पढ़ाई की कभी इतनी चिन्ता ही नहीं होती थी। उस समय न तो कल की चिन्ता थी और न आज की फ़िक्र थी। रोज़ सुबह-सुबह उठकर तैयार होने का संघर्ष कर विद्यालय जाना बहुत बुरा लगता था, पर शायद आज उसी संघर्ष के लिए तरसती हूँ। मेरे विद्यालय में हर साल क्रिसमस-डे मनाया जाता था, जिसका मुझे हर वर्ष इंतज़ार रहता था। हम सब सहपाठी अपनी कक्षा को सजाते थे और क्रिसमस-डे के उपलक्ष्य में जो नाटक होता था, उसे भी देखते थे। सर्दियों की छुट्टियों का बड़ा ही इंतज़ार रहता था और जब अधिक सर्दी के कारण छुट्टी बढ़ जाती थी तो उसका अपना अलग ही मज़ा था। वो सफ़ेद और लाल रंग की इमारत आज भी बहुत याद आती है। गलती करने पर अध्यापिका से डाँट भी लगती थी और जब अच्छे अंक आते थे तो वे प्यार भी करती थीं। उस सुख-दुख का एहसास कुछ अलग ही था। वक्त गुजरता गया और फिर उच्च कक्षाओं में प्रवेश किया। जहाँ पढ़ाई की ज़िम्मेदारियों ने घेर लिया। उन ज़िम्मेदारियों के बीच जो पिकनिक की खुशी की अनुभूति थी, वो अलग ही थी। जब उन थकावट भरी कक्षाओं के बीच खाना खाने का समय मिलता था तो उस खाने का स्वाद और अच्छा लगता था। एक दूसरे का टिफ़िन बॉक्स खाना, वो दोस्तों के साथ मस्ती करना सब कुछ बहुत याद आता है। वो सफ़र मंजिल से भी खूबसूरत था। फिर सबसे कठिन कक्षा से आमना-सामना हुआ, जहाँ पढ़ाई का भय अपनी चरम सीमा पर था। उस भय का सामना करते हुए जब उस कक्षा को पार किया तो मन में एक अजीब सा विचार उत्पन्न हुआ कि बस अब इस सफ़र के दो साल और बचे हैं। ज़िन्दगी के उतार-चढ़ाव में बारह साल कब निकल गए पता ही नहीं चला। विद्यालय के उन दो सालों को भरपूर जिया। अपने सीनियर्स के लिए विदाई-समारोह का आयोजन करना और साथ ही साथ मन में यह भाव भी आना कि अगले साल हमारे लिए भी यहीं कार्यक्रम आयोजित होगा। मस्ती, बातों में और लड़ाई में उस सफ़र का एक साल और गुज़र गया। फिर वो समय आ गया जिसका बिल्कुल भी इंतज़ार नहीं था। स्कूल का आखिरी साल। मेरे विद्यालय में बारहवीं कक्षा को दो दिन की पिकनिक पर ले जाया जाता था और हम लोगों को भी यह अवसर मिला। उस पिकनिक में बिताए हुए पल जीवन के सबसे खूबसूरत पल थे और इस तरह चौदह साल की यादें मस्तिष्क में घर कर गईं और उन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकता। मेरे विद्यालय से मेरा रिश्ता कोई दूजा जान ही नहीं सकता। वो स्कूल का सुंदर कैम्पस, वो स्कूल वाली दोस्ती और उन दोस्तों के साथ मस्ती मज़ाक। वो तीन घंटे परीक्षा में लिखना। वो कम अंक आने का दुख या ज्यादा अंक आने की खुशी। वो प्यारे अध्यापक और अध्यापिकाएँ। उस विद्यालय के साथ बिताए हर त्यौहार। वो छुट्टी के दिन। सचमुच कितने सुन्दर थे वो छोटे-छोटे पल। किसी ने सही ही कहा है किसी आनन्द का अनुभव इतना सुखद नहीं होता जितना उसका स्मरण। बस इतनी सी ही थी मेरे इस सफ़र की कहानी।

वास्तव में अतीत के चन्द क्षणों को वर्तमान में समेट कर आह! सोचना कितना अच्छा है।

निहारिका शर्मा  
हिन्दी विशेष, (द्वितीय वर्ष)

## विज्ञापन की दुनिया और हम

आज हम जिस समाज में जी रहे हैं उसमें हर व्यक्ति अपना जीवन ऐशो-आराम से जीना चाहता है। वह अपने बच्चों को एक अच्छी जिंदगी देना चाहता है, जिस कारण वह आज की जिंदगी में लगातार भाग रहा है। वह अपना भविष्य सुधारने के लिए अपने वर्तमान में सिर्फ कार्य कर रहा है। व्यक्ति हर उस वस्तु को खरीदना चाहता है, जिससे उसका जीवन आसान हो सके और भविष्य में भी उसे कोई परेशानी न हो। इसीलिए उसकी इस भाग-दौड़ की जिंदगी में विज्ञापन एक अहम हिस्सा बन चुका है। वह विज्ञापित उस हर वस्तु को खरीदना चाहता है, जो उसे लुभाती है।

उपभोक्तावादी संस्कृति के निर्माण में विज्ञापन जनसंचार के हर माध्यम पर अपनी पकड़ रखे हुए है, चाहे वह रेडियो हो, टेलीविज़न हो या इंटरनेट। हमें हर जगह विज्ञापन दिखाई देते हैं। विज्ञापन उस हर व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करता है, जिसे विज्ञापित वस्तु की जरूरत है भी और नहीं भी। विज्ञापन में उत्पाद के गुणों का बखान किया जाता है। उससे होने वाले फायदों के बारे में बताया जाता है और तो और किसी-किसी उत्पाद के बारे में तो यह तक कह दिया जाता है कि अगर आप इसे इस्तेमाल नहीं करेंगे तो आपको बहुत भारी नुकसान होगा। इस प्रकार व्यक्ति को डराकर भी उत्पाद को बेचा जाता है।

अगर हम अपने चारों तरफ नज़र डालें तो हम यह पाएंगे कि हम विज्ञापन की दुनिया से घिरे हुए हैं। अगर कोई एक व्यक्ति किसी वस्तु का इस्तेमाल करता है, तो वह उससे होने वाले फायदों के बारे में दूसरे व्यक्ति को भी बताता है और वह उस वस्तु के बारे में उन्हीं चीज़ों को बताता है, जो विज्ञापन में उसने देखीं। इस प्रकार उसके दिमाग में वह चीज़ छप जाती है। विज्ञापन में इसी प्रकार की चीज़ों को इस्तेमाल किया जाता है, जो व्यक्ति के दिमाग पर अपनी छाप छोड़ें। जैसे विज्ञापन में गीतों का इस्तेमाल होता है, जिसमें लय, ताल, इत्यादि होते हैं, जो व्यक्ति को रट जाते हैं। किसी वस्तु के विज्ञापन में किसी महान हस्ती जैसे अभिनेता या अभिनेत्री को दिखाया जाता है, ताकि लोग उस व्यक्ति को देखकर उस वस्तु को खरीदें क्योंकि वह व्यक्ति यह सोचता है कि अगर यह अभिनेता या अभिनेत्री उस उत्पाद का इस्तेमाल कर रहा है, तो जरूर उसमें कोई खास बात होगी। इसी प्रकार हर व्यक्ति विज्ञापन की दुनिया से घिरा हुआ है और अब हम इससे बाहर भी नहीं निकल सकते क्योंकि यह हमारी जरूरत बन चुका है। हम किसी भी वस्तु को अब तभी खरीदते हैं, जब तक हम कई बार उस वस्तु का विज्ञापन देखकर संतुष्ट न हो जाएँ।

मीनाक्षी

बी. ए. प्रोग्राम (तृतीय वर्ष)

आज का युग विज्ञापन का युग है। यदि हम यह कहें तो गलत नहीं होगा। आज उपभोक्तावादी समाज में विज्ञापन बहुत ही महत्वपूर्ण बन गए हैं। विज्ञापन के बिना मानो हमें वस्तु के बारे में कुछ जानकारी नहीं होती है। विज्ञापन बच्चे से बूढ़े सभी को प्रभावित करता है। विज्ञापनकर्ता ऐसे विज्ञापन बनाते हैं, जो एक निश्चित वर्ग को ध्यान में रखकर बनाए जाते हैं और वह वर्ग उन विज्ञापनों से प्रभावित भी होता है। बच्चे हों या बड़े, जवान हों या वृद्ध, स्त्री हो या पुरुष यदि उन्हें विज्ञापन में दिखाई गई वस्तु या सेवा पसंद आ जाती है तो वह उसे जब तक खरीद न ले, वे व्याकुल रहते हैं। आज विज्ञापन के द्वारा वस्तु की जो छाप मनुष्य के दिमाग

पर बन गई है, वह बहुत ही मजबूत है। यदि किसी बच्चे को कोई वस्तु विज्ञापन में अच्छी लगती है, तो वह उसे खरीदने का प्रयास करता है और खरीदने के लिए अपने माता-पिता को हर प्रकार से मनाने के लिए प्रयत्न करता है और यदि माता-पिता तब भी न माने तो वह स्वयं अपने जेब खर्च में से पैसे बचाकर उस वस्तु को खरीदता है। यह सब विज्ञापन का ही कमाल होता है कि वे (बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री और पुरुष) वस्तु को खरीदने के लिए जिसे वे विज्ञापन में देखते हैं, खरीदने का हर संभव प्रयास करते हैं। चाहे वह वस्तु खरीदने के बाद उन्हें उस वस्तु या सेवा से कोई लाभ न हो।

विज्ञापनकर्ता विज्ञापन को इस प्रकार प्रदर्शित करते हैं कि मानों वह हर व्यक्ति की मूल आवश्यकता हो और लोग इससे प्रभावित होकर ऐसा मान भी लेते हैं कि यदि यह वस्तु नहीं ली तो जीवन व्यतीत नहीं होगा। आज हम जो बाज़ार चौबीस घंटे खुले देखते हैं, यह हम कह सकते हैं कि विज्ञापनों के द्वारा ही हो पाया है। विज्ञापनों से लोग इस कदर प्रभावित होते हैं कि कोई न कोई वस्तु खरीदने के लिए आये दिन बाज़ार में जाते रहते हैं। इसलिए बाज़ार चौबीसों घंटे खुले रहते हैं। बाज़ार उपभोक्ता की माँग को जन्म देता है। इसलिए बाज़ार का विकास करने में विज्ञापन का बहुत बड़ा हाथ होता है। आज सब एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ में हैं। लोग (आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक) हर क्षेत्र में एक-दूसरे से आगे निकलना चाहते हैं। जिसका फायदा या लाभ विज्ञापन बहुत अच्छी तरह उठाते हैं और सफल भी होते हैं। हर कोई दूसरे से ज़्यादा सुंदर दिखना चाहता है। दूसरे से ज़्यादा ऐशो-आराम चाहता है और विज्ञापन इसका लाभ उठाते हैं तथा ऐसी वस्तुओं का विज्ञापन बनाते हैं एवं जनसंचार माध्यम के द्वारा विज्ञापित करते हैं। जैसे टेलीविज़न, रेडियो, समाचार पत्र, इत्यादि। ये विज्ञापन दिन भर किसी न किसी जनसंचार माध्यम द्वारा व्यक्ति के सामने आते रहते हैं। जैसे सुबह समाचार-पत्र में ऑफिस जाते समय रेडियो द्वारा और रात को टेलीविज़न द्वारा। और तो और अब तो मोबाईल या इंटरनेट में भी यदि आप ऑनलाईन कुछ देख रहे हैं, तो उसमें भी किसी न किसी वस्तु या सेवा के विज्ञापन आते-जाते रहते हैं। इस प्रकार आज मनुष्य को विज्ञापनों ने चारों ओर से घेर लिया है।

कीर्ति

बी. ए. प्रोग्राम (तृतीय वर्ष)



विज्ञापन की दुनिया ऐसी दुनिया है, जहाँ निरंतर नए-नए प्रयोग होते रहते हैं। यह ऐसे प्रयोग हैं जिनसे अधिक से अधिक जनसामान्य आकर्षित होते हैं। हर वर्ग के लोग इन विज्ञापनों द्वारा प्रभावित होते हैं। टेलीविज़न पर दिखाए जाने वाले विज्ञापन हर व्यक्ति को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित करते हैं। एक गृहिणी, कारोबारी, बच्चे, बुजुर्ग सभी विज्ञापनों से प्रभावित होते हैं। विज्ञापन की दुनिया अत्यधिक विस्तृत है। एक गृहिणी वह सामान अवश्य खरीदेगी, जो घर की साज-सज्जा या किचन में मसालों इत्यादि से जुड़ा हो। विज्ञापनों का निर्माण हर वर्ग के लोगों को ध्यान में रखकर किया जाता है। कुछ विज्ञापन बच्चों के लिए होते हैं। कुछ विज्ञापन बुजुर्ग, युवा वर्ग के लिए होते हैं। बच्चे विज्ञापन में अपने माता-पिता से ज़िद करते हुए दिखाई देते हैं कि मुझे वह खिलौना, चॉकलेट इत्यादि चाहिए या किसी और ढंग से वह विज्ञापन की वस्तु को बच्चों के लिए उपयोगी साबित करते हैं। इसका प्रभाव बच्चों पर पड़ता है और वह उस वस्तु को खरीदने के लिए लालायित हो जाते हैं। इसी प्रकार किसी क्रीम, शैम्पू, तेल इत्यादि के विज्ञापनों का प्रभाव लड़कियों पर अवश्य ही पड़ता है तथा वह अधिक सुंदर दिखने की कामना में वह उत्पाद खरीद लेती हैं।

विज्ञापन हमारी खरीदने की क्षमता में वृद्धि करता है। यदि कोई वस्तु, कार, मँहगी वस्तुएँ किसी व्यक्ति को पसंद आती हैं, तो वह किसी न किसी प्रकार उसे खरीदने के प्रयास में जुट जाता है। इससे व्यक्ति की विज्ञापित वस्तुओं को खरीदने की क्षमता में वृद्धि होती है। विज्ञापन हमारे रहन-सहन, पहनावे इत्यादि के ढंग में परिवर्तन कर देते हैं। यही कारण है कि आज विज्ञापन कंपनियाँ एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा में लगी हुई हैं।

दीपा कुलकोरिया  
बी. ए. प्रोग्राम (तृतीय वर्ष)

## भाषा और प्रेम

भाषा कुछ बना सकती थी और फिर उसे तोड़ सकती थी।  
और भाषा ने प्रेम को भी चुना था।  
प्रेम जिसे निर्मित नहीं किया जाता, प्रेम जिसे अनिर्मित नहीं किया जाता।  
प्रेम जो है  
प्रेम जो है नहीं  
प्रेम जो दोनों हैं, हैं भी और नहीं भी  
प्रेम जो दोनों हैं, हैं भी नहीं और नहीं नहीं भी है।  
भाषा केवल उलझा सकती थी। प्रेम केवल किया जा सकता था महसूस।  
यदि भाषा ने कराया था तुम्हारा परिचय प्रेम से  
तुम्हारा प्रेम सदा खत्म हो जाने के डर से घिरा रहा होगा  
बुद्ध के मौन ने बचाया था प्रेम को  
पर ये कह देना भी कुछ निर्मित कर देना है क्या सचमें ऐसा था  
नहीं था, और नहीं था था नहीं और नहीं भी न था।  
प्रेम उतना ही रहस्यमय है जितना बुद्ध का मौन।

मानविका चौधरी  
फ़िलॉसफ़ी विशेष (तृतीय वर्ष)

## है ये इश्क मेरा

तेरी आँखों के दरिया में कुछ इस तरह उतरना चाहूँ  
निकलना चाहूँ भी तो चाहकर न निकल पाऊँ ।  
याद करता हूँ हर वक्त वो दिन जब देखा था तुझे पहली दफ़ा,  
उतरा हो चाँद जैसे ज़मीन पर, थोड़ा रूठा, थोड़ा खफ़ा ।  
दिल में लिए तमन्ना, तू बस देख ले एक पल के लिए इधर  
यही चाह लिए भटका हूँ मैं दर-बदर ।  
नहीं भूल सकता वो लम्हा जब देखा तुझे किसी और के साथ,  
दिल बँटा टुकड़ों में देख हाथों में हाथ ।  
कहते हैं लोग, हूँ मैं सनकी आशिक, हूँ मैं आवारा  
क्या करूँ? नहीं है तुझे किसी और के साथ देखना गंवारा ।  
तू मेरी नहीं तो किसी और की भी नहीं, कर बैठा तय दिमाग ये मेरा,  
दिल ने कहा कर उसकी जिंदगी में उजाला, चाहे क्यों न हो तेरे में अंधेरा ।  
लिए दिल में उम्मीद, कभी तो होगी मेरी तू  
हाथ में कलम लिए करता हूँ दिन-रात यही आरजू  
नहीं हूँ मैं शाहजहाँ, जिसके ताजमहल को देख  
दुनिया करती है सलाम  
हूँ बस मैं एक आशिक, जिसकी हर साँस  
हर धड़कन पर लिखा है तेरा नाम ।

जयनायर कौशल  
बी. ए. प्रोग्राम

## पक्षी की पुकार

जालिम दुनिया जाल बिछाये  
कहाँ जाये कहाँ न जाये  
रक्षक हैं कम भक्षक हैं ज़्यादा  
किससे हम दुख की बात सुनायें  
दौड़ पड़ते हैं ऐसे जैसे भूखा शेर दौड़ाये  
किससे हम दूर रहें किसके हम पास जायें  
आशा का दीप जलाये  
जालिम दुनिया जाल बिछाये ।

अंजना  
बी. ए. हिन्दी ऑनर्स (तृतीय वर्ष)

## आईना बोल उठा

होली का त्यौहार था। सभी लोग रंग में डूबे हुए मस्ती में झूम रहे थे। चारों तरफ चहल-पहल थी। इतना शोर कि जिसमें किसी की चीख आसानी से गुम हो जाये। पकवानों की खुशबू से सारा घर महक रहा था। लोग इस खुशी के मौके पर एक-दूसरे को मुबारकबाद दे रहे थे। गले मिल रहे थे और मदहोश होकर नाच रहे थे। किसी को कोई फ़िक्र नहीं थी। ऐसा लग रहा था जैसे ग़म से उनका कोई वास्ता ही न हो। इतनी चहल-पहल के बावजूद अगर कोई इनसे महरूम था तो वो था पार्थ। वह न जाने किस दुनिया में खोया हुआ क्या सोच रहा था। अपनी सभी पुरानी ट्रॉफियों को देख रहा था, जो उसने विद्यालय में अपने बेहतर प्रदर्शन के लिए हर क्षेत्र में प्राप्त की थीं। आज वह किसी उलझन में पड़ा हुआ नज़रों से उन्हें देख रहा था। उसके कमरे में इतना सन्नाटा था, जिसमें पत्ते की खड़-खड़ से भी शायद शोर मच जाता। यह पहली बार था, जब वह होली जैसे मौके पर अपने दोस्तों से दूर आज आईने के सामने खड़ा था। अभी कल की ही तो बात थी, जब उसका परिणाम आया था। वह यू.पी.एस.सी. की परीक्षा पास कर चुका था। अब वह एक सरकारी अफ़सर बनने वाला था। सारे घर में खुशियाँ दुगुनी हो गयी थी, परंतु उसके अंदर एक अजीब सी बेचैनी और मायूसी थी। उसने शायद ज़िंदगी को इतने करीब से कभी नहीं देखा था। उसके पिताजी सरकारी विद्यालय में अध्यापक थे और माँ पेशे से वकील थीं। उसे अपनी ज़िंदगी में कभी किसी चीज़ की कमी नहीं हुई। उसने जब जिस चीज़ के लिए कहा अगले ही दिन वह चीज़ उसकी हो जाती थी। ग़म की परछाईं तक उसके ऊपर न पड़ी थी और गरीबी किसे कहते हैं यह तो केवल किताबों में पढ़ा था। फिर आज अचानक उसे अपने अंदर सब खाली-खाली और अधूरा सा लग रहा था। उसे खुद से नफ़रत हो रही थी। उसकी वह घृणा और हीन भावना अपने चरम पर पहुँच चुकी थी। उसे यह समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे? बार-बार एक घटना उसे खुद से बहुत दूर खींचे ले जा रही थी।

यह घटना उस दिन की है, जब वह अपने दोस्तों के साथ पार्टी करके वापस आ रहा था। उसकी गाड़ी काफी तेज गति से आगे बढ़ रही थी कि अचानक उसकी गाड़ी के इंजन में किसी गड़बड़ी की वजह से उन लोगों को वहीं रुकना पड़ा। सभी लड़के गाड़ी से नीचे उतरकर किसी मैकेनिक का इंतज़ार करने लगे। लेकिन मैकेनिक तो दूर की बात काली अँधेरी सड़क पर दूर-दूर तक कोई बत्ती भी न थी। आधी रात बीत चुकी थी। ठंड का मौसम था और तेज सर्द हवायें चल रही थीं। लगभग आधे घंटे तक वे लोग वहीं बैठे गाड़ी का इंतज़ार करते रहे। ठंडी हवाओं के तेज झोंकें उनके शरीर पर बड़े मोटे-मोटे गर्म कपड़ों को चीरते हुए अंदर तक बेध रहे थे। जब स्थिति असहनीय हो गई तो वे लोग कहीं विश्राम करने की जगह ढूँढ़ने लगे। तभी कहीं दूर एक बत्ती जलती हुई दिखी। उस घनघोर अँधेरे में वह छोटा का प्रकाश-पुंज आसमान में छाये बादलों के बीच से आते सूर्य के प्रकाश जैसा प्रतीत हुआ। सभी उस तरफ़ जाने लगे। वहाँ पहुँचे तो अंधेरे में कुछ स्पष्ट तो दिखाई न दिया, बस किसी की काँपती हुई सी आवाज़ में एक मीठा, स्नेह भरा स्वर गूँज रहा था। उन लोगों ने आश्रय माँगा तो एक महिला उन्हें सोने की जगह और एक फटी हुई चादर देकर वहाँ से चली गयी। पार्थ का बदन ठंड की वजह से काँप रहा था तो उस महिला ने उसके पास थोड़ी सी आग जला दी और कुछ कपड़ों से उसे ढककर सुला दिया। सुबह जब उनकी आँखें खुली तो देखा वे एक झोंपड़ी में हैं, जहाँ उनके सिवा दूसरा कोई नहीं है। सारे लड़के डर गये फिर डरते-डरते बाहर निकले तो देखा एक महिला छोटे से बच्चे को गोद में लिये बैठी हुई थी। वह शायद आधी नींद में थी। आसमान में सूरज का प्रकाश छाया हुआ था और उससे

कुछ ऊष्मा भी आ रही थी बच्चा शायद नींद में कोई स्वप्न देखकर मुस्करा रहा था। उस महिला के तन पर पूरे कपड़े भी नहीं थे लेकिन उस सूखे हुए चेहरे पर एक अजीब सी शांति और संतोष दिख रहा था। वह बच्चे को अपने शरीर की गर्मी दे रही थी।

जिस प्रकार चिड़िया अपने बच्चों को सेंकती है। उसका बदन रात भर इस ठंड में बाहर रहने की वजह से ठंडा पड़ गया था। पार्थ ने उसे बहुत देर तक प्यार भरी निगाह से देखा और फिर अपनी जैकेट उतारकर उसे ओढ़ाते हुए वहाँ से चला गया। वह उसे उस सुकून की नींद से जगाना नहीं चाहता था। लेकिन उसे अंदर ही अंदर विस्मय और ग्लानि हो रही थी। वह घर तो वापस आ गया लेकिन उसकी आँखों से वह चेहरा ओझल न हो सका। शायद यही वजह थी कि वह अपनी माँ से और भी प्यार से आकर लिपट गया। फिर जब वह एक बार उधर से गुजर रहा था तो सोचा कि वहाँ से होता चले लेकिन उस झोंपड़ी की जगह एक कारखाना बना हुआ दिखा और उस महिला का कोई पता नहीं था वह बहुत दिनों तक उन्हें ढूँढ़ता रहा लेकिन वह नहीं मिली।

आज भी वह इस आईने के सामने खड़ा खुद को देखकर यही सोच रहा था कि आखिर ऐसा क्या हुआ? वह कहाँ चली गई और न जाने किस हालत में होगी। उस एक घटना ने उसकी जिंदगी पलट दी थी। अब उसे विलासियों का जीवन पसंद नहीं आता था। वह अपनी जिंदगी में भी वही शांति चाहता था, जो उस महिला के मुख पर थी। उसे विस्मय होता था कि जिसने बिना अपनी परवाह किये मेरे लिए इतनी कुर्बानी दी, आखिर मैंने उसके लिए क्या किया? उसने अपने कीमती वस्त्र उतार दिये और शून्य में खो गया। फिर उसकी नज़र अपनी आँखों पर पड़ी, जिसमें उस माँ का स्नेह और वात्सल्य झलक रहा था। जिसे किसी भी कीमत पर खरीदा नहीं जा सकता था। फिर उसने अपने माथे को गौर से देखा, जिसे उन हाथों ने अपने गर्म स्पर्शों से सारी रात सेंका था। फिर उसने उस शरीर को देखा, जिसपर आज तक असंख्य पैसे खर्च हो चुके थे, लेकिन जिससे किसी का भी भला नहीं हुआ था। फिर न जाने क्या सोचता हुआ वह आईने के सामने लगभग एक घंटे तक बैठा रहा। सामने वह कॉल-लेटर पड़ा हुआ था और वह किसी गहरे चिंतन में डूबा हुआ कुछ ढूँढ़ने की कोशिश कर रहा था। फिर अचानक एक ऊर्जा और विश्वास से भरी हाथों से उसने उस लेटर को उठाया और आत्मविश्वास से भरे लहज़े में मोटर बाईक स्टार्ट करके फिर उसी तरफ़ चल दिया लेकिन उसके कानों में होली के गीतों के बजाय एक अलग ही गूँज थी। जो गूँज उसे रातों को थोड़ी बेचैनी पैदा करने के बाद एक मीठी नींद में सुला देती थी। उसके हर फैसले से पहले उसके कानों में अपनी झंकार छोड़ जाती थी। आज भी वह गूँज उसके कानों में और भी समीप आकर गूँज रही थी लेकिन आज उसकी आवाज़ में कोई कंपन न था बल्कि करुणा और विश्वास था। वह चलता जा रहा था और वह गूँज और तेज़ होती जा रही थी..। वैष्णव जन तो तेने कहिये जे...पीर पराई जाने रे.....।

वर्षा

हिन्दी विशेष (द्वितीय वर्ष)

## सड़क के बच्चे

सड़क हादसों से भरी सड़कें—आज के युग में अगर सड़कों को हादसों से भरी कहा भी जाए, तो यह गलत न होगा। चलती, दौड़ती, भागती सड़कों पर अचानक कोई गाड़ी दूसरी गाड़ी से टकरा जाती है तथा जिंदगी की वो यात्रा 'अंतिम यात्रा' में बदल जाती है।

उसी हादसों से भरी एक सड़क पर एक बच्चा, जो करीब सात-आठ साल का है, रहता है। दिन-भर जब सड़क पर लालबत्ती होती है तो वो अपना खेल दिखाने के लिए चौराहे पर आ खड़ा होता है। लोहे के गोले में से निकलता है। उसमें से निकलते वक्त कभी-कभी उसे लालबत्ती के हरी हो जाने का भी ध्यान नहीं रहता। उसके बाद वो सड़क पर खड़ी गाड़ियों की खिड़कियों पर आकर अपने खेल दिखाने का पैसा माँगता है। पर सभी उसे कुछ दें ये ज़रूरी नहीं, कुछ लोग उसे भगा भी देते हैं, केवल भगाते नहीं, तिरस्कार करके भगाते हैं। उनकी नज़रों में ये एक तरह की भीख माँगना है। वे क्यों उस खेल को देखने के पैसे दें? जिसे उन्हें देखना ही नहीं था, जिसकी उन्होंने टिकट भी नहीं ली थी। फिर क्यों वो अचानक अपने पैसे यूँ ही बेकार करें? क्या पता उन्हें उन्हीं पैसे से आगे की पान की दुकान से अपना शौक पूरा करना हो या अपने घर के बच्चों के लिए खिलौने ही खरीदने हों। ये सड़क के अनाथ बच्चे तो उनके नहीं, न ही इनकी कोई समस्या ही उनकी है। इतना सब सोचकर खिड़कियाँ बंद की बंद रह जाती हैं। हरी-बत्ती हो जाती है तथा हादसों से भरी सड़क फिर दौड़ने लगती है। वे बच्चे, वे 'अनाथ बच्चे' इंतजार करने लगते हैं। अगली लालबत्ती होने का, जब सबकी यात्रा में वहाँ विराम लग जाता है, तब शुरू होती है उनकी यात्रा, उनकी जीवन-यात्रा।

वो बच्चे उस यात्रा में उन यात्रियों से माँगते हैं—अपना बचपन और अपनी जिंदगी। जिससे वो कम से कम एक समय का भोजन ही कर लें, भरपेट न सही पर कुछ तो खा लें, जिससे की अपनी अगले दिन की यात्रा पर जा सकें। ये उनकी गाड़ी में पेट्रोल के समान है। जिसके बिना तो गाड़ी का चलना संभव ही नहीं। चाहे इरादे कितने ही बुलंद क्यों न हों?

उस हादसों से भरी एक सड़क पर उस बच्चे या उस जैसे बच्चे की जान की कीमत नहीं है। कोई शायद सोचता भी नहीं कि क्या होगा अगर वो लालबत्ती अचानक हरी हो जाए और हादसों से भरी हुई उस सड़क पर एक हादसा और हो जाए। किसे परवाह है उन बच्चों की ? ये सवाल वो बच्चे भी सोचते हैं, पर जवाब भी उनके पास है, इसीलिए जब खिड़कियाँ बेरहमी से बंद हो जाती हैं तो वे भी चुप-चाप अगली खिड़की की ओर बढ़ जाते हैं। अब न उन आँखों में कोई आस है और न ही बचपन का कोई लक्षण। वो तो बस बेबस हैं, लाचार हैं, बुजुर्ग हैं।

कोटिल  
हिन्दी विशेष (द्वितीय वर्ष)

## खोज

समय अपनी चाल चलता जा रहा है, उसी तेज़ी से—जिस तेज़ी से परिवर्तन समाज, विचार, वेशभूषा में हो रहा है तथा इसी बीच तेज़ी से बढ़ते समय में कांता के जीवन में ठहराव आ जाता है। कांता भी समय के साथ चलने वाली युवती है, जो अपने भविष्य को बेहतर बनाने के लिए प्रयत्नशील रहती है लेकिन आज उसका मन ठहर सा गया क्योंकि भविष्य बनाने की होड़ में वह अपने मन को मार रही है, परंतु आज उसके मन ने उसके हृदय की बात मानकर उसके पाँव को जकड़ कर उसे रोक लिया है क्योंकि आज रवि से मिली इसी मुलाकात में कांता पहली बार दिमाग को छोड़ हृदय से काम ले रही है।

कांता एक निम्न मध्यवर्ग की समझदार युवती है, जो बचपन से ही अकेलेपन में रही है तथा केवल किताबों से ही खेती है और लोगों के भीड़ से दूर रही है और अपने जीवन में किसी को कभी महत्वपूर्ण जगह नहीं दे पाई है। अब वह एम. ए. में उत्तम अंक प्राप्त कर समय से हाथ मिलाकर आगे बढ़ ही रही थी कि रवि से उसकी मुलाकात हो गई। रवि जो अभी अपने जीवन में सफल हुआ है वह पत्रकार बन चुका है परंतु पत्रकार बनने वाला रवि भी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में परिवार समाज से दूर ही रहा, कभी अकेलेपन का शिकार ना हुआ। इन दोनों की मुलाकात चाय के स्टॉल पर हुई, जब कांता के हाथ से चाय का गिलास फिसल कर रवि के ऊपर गिरा और दोनों का वार्तालाप क्षमा—याचना से आरंभ हुआ। फिर दोनों की बातों का सिलसिला चला और समाप्त भी हो गया। कांता परेशान है, आज भविष्य के लिए नहीं बल्कि रवि की बातों को याद कर के कि वह आज इतना क्यों सोच—विचार रही है। परंतु कांता जल्द ही रवि को भूलकर सो गई, और दिन—बीतते गए पर कांता के मन में आज भी रवि से मुलाकात की बातें उसकी स्मृति नहीं मिट पा रही थी। शायद इसलिए क्योंकि जीवन का अकेलापन ही उसे रवि के नज़दीक जाने के लिए प्रेरित कर रहा है। और अगले ही दिन रवि को ढूँढ़ने फिर उसी चाय के स्टॉल पर गई जहां शायद रवि भी उसका इंतज़ार कर रहा था लेकिन दोनों आज एक—दूसरे से मिलने आते हुए भी अजनबी बनने का प्रयास कर रहे थे। परंतु कुछ समय बाद रवि ने आवाज़ लगा ही दी कहा— “कांता आज चाय संभल कर लेना”...और दोनों खिलखिला उठे। फिर दोनों ने साथ चाय पीते हुए एक—दूसरे से दोस्ती की और अपने बारे में सभी बातें साझा की और प्रतिदिन मिलने लगे। आज एक वर्ष बीत गया। कांता अब अकेलेपन से काफ़ी दूर हो गई और रवि के जीवन में भी अब कोई महत्वपूर्ण था। दोनों समय की चाल के साथ ही आगे बढ़ते जा रहे थे कि कांता के जीवन में आज फिर अकेलापन आ गया क्योंकि रवि का दो महीनों से कुछ पता नहीं है। वह कांता से नहीं मिल रहा था और ना ही किसी को उसकी खबर थी। बस कुछ दिन पहले कांता से कह रहा था “माँ—बाप ने बुलाया है वहाँ जाना है।” यह सोच कर कांता सब्र कर लेती है। लेकिन आज छः महीने से ऊपर हो गए रवि का कुछ पता नहीं और कांता का अकेलापन पहले से ज़्यादा भयानक स्थिति में पहुँच चुका है। अब कांता प्रोफ़ेसर बन चुकी है और अपने को व्यस्त रखती है और समय से हाथ मिलाकर चलने भी लगी है।

परंतु कांता आज ठहर गई क्योंकि रवि उससे मिला। आज फिर कांता को पहली मुलाकात की याद आई लेकिन वह याद उसे अब ज़्यादा दर्द दे रही है क्योंकि रवि ने शादी कर ली है और कांता आज भी अकेली है और अपने जीवन की सबसे बड़ी भूल उस चाय के कप को मान बैठी है जो रवि के ऊपर उसने गिराया था और पहली बार हृदय की बात मानी। जीवन के अकेलेपन को बढ़ाकर कांता आज ठहर गई व समय उस कांता के लिए आज फिर वही अकेलापन ढूँढ़ कर उसके समीप ले आया।

कोमल  
हिन्दी विशेष (द्वितीय वर्ष)

## मेरा कैरियर लक्ष्य कल्पना चावला से प्रेरणा

“इस जीवन का उद्देश्य नहीं है,  
शान्त भवन में टिक रहना।  
वरन पहुँचना उसी मार्ग पर,  
जिसके आगे राह नहीं।।”

इस असीम संसार में लक्ष्यरहित जीवन उस नौका के समान है, जो स्थिर पानी में दिशारहित पथ पर बिना हिचकोले खाए तलहटी में समा जाता है व अपना अस्तित्व ही खो बैठता है। उद्देश्यरहित जिजीविषा उस निरीह पशु के समान है जो इस जीवनदायिनी धरा पर बोझरूप विद्यमान है। सृष्टि उत्पत्ति के वर्षों बाद जब पृथ्वी के ऊपरी पटल पर जीवन ने अपनी आँखें खोलीं, तभी से यह अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता रहा। एक पक्षी भी जब अपनी आँखें घोंसले से बाहर निकालता है, तो गगन में स्वच्छंद विचरने की कल्पना उसका एकमात्र उद्देश्य या लक्ष्य होता है। एक बीज भी जब अंकुरित होता है तो वह भी आकाश की ओर अपने लक्ष्य को केन्द्रित कर आगे बढ़ता है। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि इस धरा पर एक सफल जाति (मानव, पक्षी, पेड़, पौधे इत्यादि) वही है, जो हमेशा अपने लक्ष्य को केन्द्रित कर आगे बढ़ती रहे।

17वीं तिथि मार्च महीना, वर्ष 1962 को ऐसी ही महान् आत्मा ने इस भारत-भूमि पर जन्म लिया, जिसने अंतरिक्ष में अपने पग रखने के अपने लक्ष्य के साथ मानव-कल्याण हेतु वहाँ अनेक शोध किये, जिनसे मानव-जीवन को अधिक सरल, सुगम व स्वस्थ बनाया जा सके। हरियाणा के टैगोर बाल निकेतन सीनियर सैकेंडरी स्कूल करनाल से प्राथमिक शिक्षा प्राप्त, पंजाब इंजीनियरिंग कॉलेज से एरोनॉटिकल इंजीनियरिंग में स्नातक, टैक्सास विश्वविद्यालय से एरोस्पेस इंजीनियरिंग में स्नातकोत्तर, कल्पना चावला ने वर्ष 1997 से 17 नवंबर को अंतरिक्ष यान कोलंबिया एस.टी.एस.-82 में बैठकर पहली बार अंतरिक्ष में अपनी बाहें फैलाई। ऐसा करने वाली वह भारत में पैदा हुई पहली महिला व राकेश शर्मा के बाद दूसरी भारतीय बनी। वर्ष 2000 में दुबारा इन्हें कोलंबिया एस.टी.एस.-107 यान पर बैठ अंतरिक्ष में जाने का सुनहरा मौका मिला। वहाँ इन्होंने लगभग 80 ऐसे शोध किये, जिससे पृथ्वी व अंतरिक्ष के विज्ञान, नवीन प्रगतिशील तकनीकी विकास व अंतरिक्ष यात्रियों के स्वास्थ्य व सुरक्षा को समझा जा सके। पर दुर्भाग्यवश इन प्रयोग-उपलब्धियों के पृथ्वी की सतह पर पहुँचने से पहले ही 1 फरवरी 2003 को यान में बैठे सात शोधकर्ताओं के साथ ही इनका निधन हो गया। इन्होंने शारीरिक रूप से हमसे विदा तो ले ली, पर अपने लक्ष्य को हासिल करने व मानव-समुदाय के कल्याण-हेतु अपने कार्य को सुचारुपूर्वक करने की सीख पूरे मानव-समुदाय को दे गई।

कल्पना चावला के जीवन को प्रेरणा रूप में मान, मुझे जयशंकर प्रसाद की पक्तियाँ याद आती हैं—  
अब जागो जीवन के प्रभात  
रजनी की लाज समेटो तो,  
कलरव से उठकर भेंटो तो  
अरुणाचल में चल रही वात  
अब जागो जीवन के प्रभात।।

कल्पना चावला से पूर्व किसी महिला ने अंतरिक्ष में जाने को अपना लक्ष्य नहीं बनाया, फिर भी अपनी लगन व कठिन परिश्रम से उन्होंने अंतरिक्ष ज्ञान को अपना कैरियर चुना। ठीक उसी प्रकार शिक्षक बनने के क्षेत्र में मेरे परम जीवन का उद्देश्य एक प्रोफ़ेसर बनना है, जिसके माध्यम से मैं समाजिक कुरीतियों, अज्ञानतिमिर, दुर्व्यवहारों आदि को हटाकर एक नए विकासशील, प्रगतिशील, सद्व्यवहारपूर्ण, द्वेषरहित व शिक्षित समाज के निर्माण में अहम भूमिका निभा सकूँ। मैं वैसी शिक्षिका बनना चाहती हूँ जो समाज के सभी वर्ग के विद्यार्थियों को समदृश्य रख, देश की प्रगति में सहयोग दें। मैं समाज में हो रही गतिविधियों का जड़ तक अध्ययन कर, उन्हें नए पंख देने की भूमिका अदा करना चाहती हूँ। शिक्षा को डिग्री से नहीं वरन ज्ञान (वास्तविक व प्रायोगिक) से जोड़ना चाहती हूँ।

मैं मानव-जीवन में शिक्षक की अहम भूमिका निभाकर युवा पीढ़ी में जोश भरना चाहती हूँ। समाज में महिलाओं को अपने अस्तित्व व अपनी अहम भूमिका के प्रति जागरूक करना चाहती हूँ। समाज का कल्याण करना चाहती हूँ। मैं एक शिक्षिका बनना चाहती हूँ।

“संभव की सीमा जानने का केवल  
एक ही तरीका है  
असंभव से भी आगे निकल जाना।”

अंजू कृष्णियाँ  
बी. ए. हिन्दी विशेष, (तृतीय वर्ष)



## अपनापन

इस भीड़ से मत डरना  
ये सब तो अनजान है,  
तुझसे बड़ा ना इनमें कोई  
सब तेरे समान है।  
करना बड़ा मुश्किल  
कहना बहुत आसान है,  
कह भी दे कुछ तुझसे कोई  
तो भूलना मत  
तेरे पास भी जबान है।  
गिर भी जाए तो, हार न मानना  
दोबारा उठने की अभी तो तुझमें जान है,  
सोच बहुत ऊँची है तेरी  
दिल तेरा आसमान है।  
जिस शख्स के जरिए  
तू वहाँ खड़ी है,  
वो माँ ही तेरी पहचान है  
फिर कौन हरा पाएगा तुझको भला  
जब साथ तेरे उस माँ का वरदान है।  
इस भीड़ से मत डरना  
ये सब तो अनजान है,  
ये सब तो अनजान है।

प्रस्तुत कविता का एक विशेष संदर्भ है। दिव्या की सहेली टेलीविज़न के जाने-माने शो के ऑडिशन के लिए गई तो दिव्या साथ थी। वह भीड़ को देखकर घबराई तो उसने यह कविता रच कर उसे ढाँढस दिया और उसकी सहेली शो के लिए चुन ली गई।

दिव्या  
हिन्दी विशेष, तृतीय वर्ष

## रुढ़ियों को मशविरा

जाग उठी हैं ख्वाहिशें  
तो उन ख्वाहिशें को न रोक लेना  
जो मिली है बंदिशें  
उन बंदिशों को तोड़ देना  
बढ़ जाओ चाहें, जितना भी तुम  
एक दिन तो है तुमको रुकना।  
हम भी तो हैं इसाँ जैसे तुम हो  
हमको कमतर न तुम खुद से तोल देना  
काबिल हम, एक-दूजे के अगर तो  
वो समान रूतबा भी तुम मुझको देना  
ज्ञान-विज्ञान की करते हो बातें अगर  
उस दकियानूसी सोच को भी छोड़ देना  
आखिरी मशविरा उन रुढ़ियों को भी  
की औरतें थी, हम अब तक  
पर औरतें बनकर हमको नहीं है रहना।

अतीक्षा  
बी. ए. हिन्दी विशेष, तृतीय वर्ष

## जहाँ चाह वहाँ राह

मोहन गाँव में रहने वाले एक गरीब किसान का होनहार बेटा था। वह पढ़ाई में होशियार होने के साथ-साथ एक अच्छा इंसान भी था। उसके पिताजी उसे पढ़ा-लिखाकर डॉक्टर बनाना चाहते थे परन्तु मोहन को अपने अमीर सहपाठी साहिल का जीवन लुभाता था, परन्तु गरीब होने के कारण वह अपनी इच्छाएँ पूरी नहीं कर पाता था, अतः परेशान रहता था।

मोहन को परेशान देखकर एक दिन उसके अध्यापक ने उससे उसकी परेशानी कारण पूछा। मोहन को संकोच की स्थिति में देखकर एक दिन उसके अध्यापक ने कहा— “यदि तुम मुझे अपनी परेशानी बताओगे तभी तो मैं तुम्हारी सहायता कर पाऊँगा। आश्वस्त होने पर मोहन ने अध्यापक को बताया कि “मैं डॉ. बनना चाहता हूँ परन्तु अपने दोस्त को मौज-मस्ती करते देख मेरा मन भी भटकने लगता है और मेरा मन पढ़ाई में नहीं लगता है। मौज-मस्ती करने के लिए मेरे पास पैसे नहीं हैं।” मोहन की व्यथा सुनकर अध्यापक ने मोहन से कहा — तृष्णा न जीर्णा वयं एवं जीर्णाः अर्थात् मनुष्य की इच्छाएँ कभी बूढ़ी नहीं होतीं। उन्हें पूरा करते-करते मनुष्य ही बूढ़ा हो जाता है। भौतिक सुख की लालसा आजीवन बनी रहती है। एक इच्छा की पूर्ति—दूसरी इच्छा को जन्म देती है और मनुष्य इच्छा रूपी भँवर में गोते खाता रहता है। अन्ततः विलीन हो जाता है अर्थात् संसार रूपी संसार में लक्ष्य-विहीन होकर इस प्रकार भटक जाता है कि चाहकर भी वह उससे उबर नहीं सकता। अध्यापक ने मोहन को बताया कि यदि वह अपनी इच्छाएँ पूरा करना चाहता है तो पहले उसे अपना लक्ष्य निर्धारित करना होगा और अपने लक्ष्य को ही अपनी इच्छा बनाना होगा।

अध्यापक की बात ने मोहन पर गहरा प्रभाव डाला और अपने लक्ष्य को अपनी इच्छा बना लिया। बहुत परिश्रम करके वह एक दिन डॉक्टर बनकर अपने गाँव लौटा तो अपने निकम्मे दोस्त को देखकर वह दंग रह गया कि न तो उसके माता-पिता ही रहे और न ही उसका धन। उसने सारा धन मौज-मस्ती में उड़ा दिया।

मोहन को डॉक्टर के रूप में देखकर उसका दोस्त शर्मिन्दा हुआ। वह बेरोजगार था और किसी हुनर के न होने पर मजदूरी करने को मजबूर था। अपने उस दोस्त को देखकर मोहन के मस्तिष्क में अतीत की घटनाएँ कौंधने लगीं। अपने मार्गदर्शक अध्यापक के प्रति वह हृदय से श्रद्धानत हो गया, जिनके कारण आज वह अपनी सारी इच्छाएँ पूरी कर पाया था। अब न केवल मोहन के माता-पिता को अपितु समाज को भी उस पर गर्व था।

प्रस्तुत कहानी हमें सोचने पर मजबूर करती है कि इच्छाओं की पूर्ति कौन नहीं चाहता? परन्तु इच्छाएँ लक्ष्य के आगे मजबूर हैं। अगर हम अपने लक्ष्य को ही अपनी इच्छा बना लें, तो इच्छाओं की पूर्ति अपने आप ही हो जाएंगी।

कामिनी सिंह  
बी. ए. प्रोग्राम, तृतीय वर्ष

## पुनर्जन्म

(मैं ज्योति, हरियाणा के सोनीपत जिले के एक छोटे से गाँव दहीसरा की रहने वाली हूँ। बड़े अरमानों और साध के बाद दिल्ली जैसे बड़े शहर के बड़े कॉलेज मिरांडा हाउस में पढ़ने के लिए भेजी गई हूँ। यहाँ आकर लगता है कि यह जीवन और विशेष तौर पर लड़कियों की जिंदगी का एक अनूठा अध्याय है, जो मेरे सामने खुल रहा है। दिल्ली के ही समीप महिलाओं की जो स्थिति है—पितृसत्तात्मक समाज में उन्हें जिस प्रकार दोगले दर्जे का नागरिक समझा जाता है, उसे शायद अनुभव करके ही जाना जा सकता है। प्रस्तुत कहानी मेरे ऐसे ही अनुभवों पर आधारित है। केवल पात्रों के नाम बदल दिए गए हैं।)

‘बन्नो तेरा स्वैगर लागे...’ ढोलक की थाप पर खट-खट बजता हुआ चम्मच और छोटी-बड़ी, नाटी-लम्बी, गोरी-सांवरी, मोटी-पतली, चाचियों-ताईयों, बुआओं-मौसियों, बहनों-भाभियों के ताल-बेताल स्वर स्नेहा के कानों में पड़ रहे थे। स्नेहा चुपचाप सिर झुकाए इन ताल-बेताल गानों को कोई घंटे भर से सुन रही थी। अब तो गरदन भी दर्द करने लगी थी झुकाए-झुकाए। पर क्या करती बेचारी दुल्हन जो बनने वाली थी। न नज़रें उठा सकती थी, न गर्दन। उसकी आँखों में ढेरों सपने दफन हो चुके थे। वो सपने जो मालिक टोला की मोनिका को फर्राटे से साइकिल पर पढ़ने जाते देख उसका मन बुनने लगता था या वो वाला सपना जो बैडमिंटन लेकर खेल-खेलकर और बड़ा सा कप जीतकर वो दुनिया को दिखा देना चाहती थी पर भाग्य कहा जाए या परिस्थिति अभी सोलह की को भी पूरी नहीं हुई कि लगातार बढ़ते हुए दबाव के कारण पिता ने उसका रिश्ता तय कर दिया।

आज सगाई है स्नेहा की औरतों का ये जमघट घर-आंगन में इसीलिए लगा हुआ है। स्नेहा के भीतर ही भीतर रोष का उबाल आ रहा था, जो शब्दों से नहीं चुपचाप आँखों से रह-रहकर छलक उठता था।

“ए रो मती सारा काजल फैला रही है अभी दूल्हा आएगा अँगूठी पैनाने तो बिल्ली की सी आँखें देखेगा।” भाभी ने तो अपनी ओर से चुहल की थी, पर स्नेहा को ज़ोर की रूलाई आ गई।

“क्या कसूर है उसका जो अटारह की भी नहीं होने दे रहे उसे, इतनी जल्दी पड़ी है बोझ उतारने की। क्या बोझ है वो” पर पिताजी को तो दिन-रात लोगों से एक ही नसीहत मिल रही थी “छोरी ने ब्याह दे जल्दी, क्यों बोझ ढो रहा है? माँ तो है नहीं छोरी की, कदी ऊँच-नीच न हो जाए।” का ही यह परिणाम था कि पिताजी जल्दी से जल्दी उसे ब्याहने पर जुट गए थे। स्नेहा सोच रही थी मेरा क्या कसूर छोटे भाईयों को तो देख ही रही थी और पढ़ भी रही थी, भले ही आठवीं में ही स्कूल छोड़वा कर पत्राचार में डाल दिया उसे, पर वो तो मुस्तैद थी। घर का काम और अपनी पढ़ाई दोनों नावों पर बखूबी सवारी करके भी डिग नहीं रही थी। पर अब? भविष्य एक बड़ा प्रश्नचिन्ह बनकर उसके सामने खड़ा था। जिसके पल्लू से जन्म भर के लिए बँध रही है—वो कौन है? क्या है? कैसा है? उसे कुछ पता नहीं बस इतना ही सुना है कि अच्छा खाता-कमाता है। उससे किसी ने एक बार भी पूछने की कोशिश नहीं की। वो जैसे एक खिलौना भर हो जिससे जो जब चाहे, तब जैसे चाहे वैसे खेले। उसका भी दिल है, अरमान है, सपने हैं पर ब्याह-ब्याह और ब्याह— उसके बाद किसी को कोई परवाह नहीं। गले में पड़े बोझ की तरह उसे उतारकर फेंका जा रहा है। स्नेहा सोच में डूबी थी तभी नन्हीं दौड़ती हुई आई “एरी बुआ गाँव में तो बड़ा झगड़ा हो गया है। यार उठा उठाकर पीट रहे हैं पल्ली गाम बारे छोरे।

“हैं क्या हुआ?” सभी औरतें एक साथ चौंक उठीं और जिसे जहाँ दरवाज़े, खिड़की, झरोखे पर जगह मिली वहीं से वो आँख लगाकर देखने लगी। हो-हल्ला सुनाई पड़ने लगा था। हुआ क्या? सभी के चेहरों पर एक ही सवाल था। तभी सरपट लकड़ी दादी आई। 75 की दादी अब थोड़ा लंगड़ाकर चलने लगी थी पर लाठी टेकती हुई वह सरपट भागती सी ही अन्दर घुसी—“ए अन्दर हो जाओ सब। दरवाजे खिड़की बंद करो।” दादी ने आदेश दिया तो औरतें दरवाजे बंद कर उनके चारों ओर जमा हो गईं। घर पर मर्द के नाम पर उस समय स्नेहा का किशोरवय भाई था। बाकी लोग गाँव के समुदाय भवन में सगाई में आने वाले लोगों के स्वागत की तैयारी में लगे थे और घर के अंदर तो औरतों ने ही संभालना था।

“दादी के हुआ”—चाची ने ज़ोर से पूछा।

“अरे होना के था टैम देखे न बखत। ऐसी छट्टा गाय हो गई हैं। कि टाइम—बेटाइम इधर—उधर चल देती है।”

“पर हुआ क्या है?”— ये पहलादपुर वाली मामी थीं

“अरे ये घनेसरी, छोरियों के संग चल दी साँझ पड़े हॉडने— दादी ने बैठते हुए कहा

‘कित’?— सरला ने प्रश्न किया

“अरे हुआयों की शाम को छोरियों का जी हो आया जरा हवा खाण का,

“ये तीनों की तीनों”—दादी ने ज़ोर से सांस लेते हुए बताया—

कोण—तीनों?— रोसनी ने पूछा

“दो बसेसर की, अर रामप्रसाद की छोरी खेतों की तरफ़ चल दीं”।

“फेर”?

“संग मिलगी घनेसरी। ये तो न की छोरियों को कहती की घर चाला। ये भी हो ली साथ”—

कहानी खाली दिलचस्प हो चली थी।

‘फिर’ सभी की ज़बान पर प्रश्न था।

“अरे पाणी दे रे गला सूख रहा है—दादी ने बात को चाशनी में डाल दिया था — काजल दौड़ कर पानी लाई। दादी ने पानी पिया और फिर से चालू हो गई। “वो जो किसन का खेत है न कोणे वाला वहाँ पर थीं वे चारयों की चारयों, पल्ले (परले) गाम ते कुछ छोरे उस तरफ आ निकले। उनमें ते एक ने छोरियाँ ते कई यो दुपट्टा तू मने देती जा’ और उसके दुपट्टे को हाथ मार्या उन्ने। घनेसरी ने कहा— “जादा हीरो मति बन— दुपट्टा वापिस कर छोरी का’ तो वे हँसण लाग सै होर बोले दुपट्टा क्या हम तो जे छोरी ने बी ठा ले जागें।” तो घनेसरी चिल्लाई। इत ते बालो, गोपाल, रमेस अर पाँच छः छोरे आ गए। एक ने उसके कनपटी पे धर दी। उस समै तो चार्यों चले गै अब पूरा रेला आ गया है बल्लम, बैट, डंडा, गंडासा, हाकी ले के पूरे गाँव में ऊधम मचा रखा है। घर ते खींच—खींच कर मार रहे हैं। दादी हॉफने लगी थी।

तभी दरवाज़ा भड़भड़ा उठा। औरतें डर कर अवाक् हो उठीं। बाहर ऊधमी लड़कों का पूरा रेला था। किसी ने जोर से दरवाज़े को धक्का दिया तो दरवाज़े की कुंडी टूट गई भड़ाक से दरवाज़ा खुला। औरतों का खून सूख गया। चेहरे पर हविश और हाथों में हथियार लिए वो लड़के अंदर घुसे। भद्दी—भद्दी बातें बोलते वो औरतों की ओर बढ़े। औरतें चीखकर अंदर जा घुसी पर स्नेहा वैसे ही बैठी रह गई गर्दन झुकाए।

“ओ हो यहाँ तो तेरे लिए दुल्हन तैयार से— एक बोला

“ठा लै इसने”— ये दूसरा था

छोरी तो घणी सुथरी है— उनमें से जैसे ही स्नेहा की ओर हाथ बढ़ाया स्नेहा उठकर पीछे की ओर हटी उसकी

नज़र कोने में पड़ी दरांती पर मई लपककर उसने दराती उठाई और शेरनी की तरह उन लड़कों के आगे तान दी।

“खबरदार जो कोई आगे बढ़ा”— बाहर शोर बढ़ गया था। मालिक टोला के लड़के उन लड़कों से भिड़ने आ गए थे। खून-खराबा होने ही वाला था कि फिर शोर मचा—

‘पुलिस आ गई पुलिस’— उन लड़कों में से जिसे जहाँ जगह मिली वहीं से भाग निकला।

शोर शराबा हो हल्ला जब शांत हुआ— तो सारी औरतें बाहर निकल आईं और स्नेहा को शाबासी देने लगी। स्नेहा शांत थी और मन ही मन कोई फैसला लेने की सोच रही थी। तभी बारात घर से खबर आई “गाँव में उपद्रव के खबर के कारण स्नेहा के ससुराल वालों ने आज आना टाल दिया”।

औरतें आपस में खुसर-फुसर करने लगीं। कुछ बोल स्नेहा के भी कानों में पड़ रहे थे— “क्या किस्मत लाई है छोरी हर काम में विघ्न”

‘च्च च्च इब के होगा’

“ब्याहना तो वहीं होगा नहीं तो छोरी की बदनामी”

स्नेहा के होठों पर अनजानी सी मुस्कान आ गई अब वह चुप न रह सकी।

“वाह रे वाह— माँ न रहे तो लड़की का कसूर, पढ़ने जाए या बाहर जाए और कोई छेड़े तो छोरी का कसूर, जल्दी ब्याह दो के बीच दूसरे छोरे आकर ऊधम मचाएँ, तो भी छोरी का कसूर’ सच्ची बात तो ये है मैं भी अब पिताजी के आगे अड़ जाऊँगी, नी करना मुझे ये ब्याह अभी, पढ़ना है पढ़ूँगी, जरूर पढ़ूँगी। अब मुझे कोई नी रोक सकता।

सभी औरतें एक-दूसरे का मुँह देख रही थीं। भाभी ने कुछ बोलने को सोचा ही था कि लक्खी दादी ने ऊँगली उठाते हुए कहा— “छोरी बात तो पते की कह रही है और उन्होंने अपना हाथ आशीर्वाद देने के लिए स्नेहा के सिर पर रख दिया।

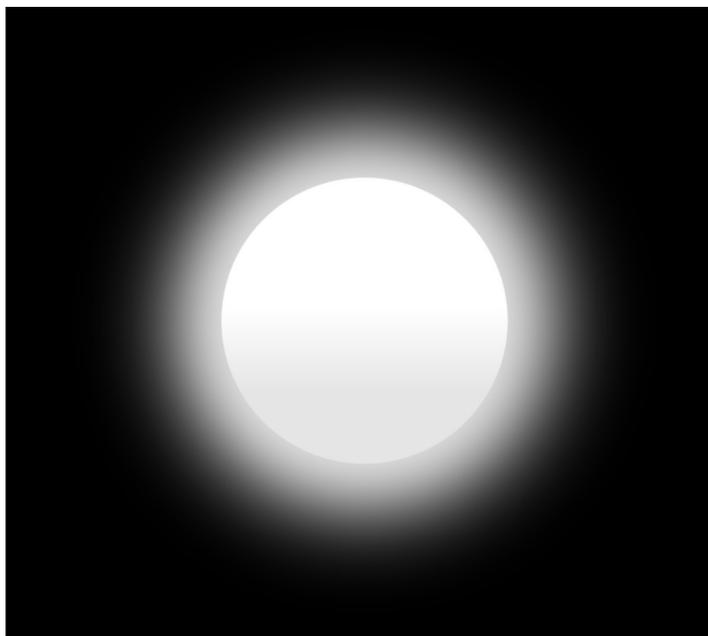
ज्योति  
संस्कृत विशेष, प्रथम वर्ष

## पहचान

सूर्य को पहचान उसके तेज ने दी।  
चन्द्रमा को जाना उसकी चांदनी से ही।  
हवा का ज्ञान उसके स्पर्श से हुआ।  
रंगों की पहचान आँखों ने दी।  
फिर भी रुकती नहीं है  
एक तलाश जो है जिंदगी।  
अपने-अपने सम्मान की  
अपनी एक पहचान की।

मेघा

बी.एल. एड. द्वितीय वर्ष



## छात्राणां कर्तव्यानि

छात्रावस्था मानवजीवनस्य महत्त्वपूर्णा जीवननिर्मात्री अस्ति। अस्याम् अवस्थायां यादृशमपि जनः करोति तादृशमेव आजीवनं प्राप्नोति। अतएव सर्वस्वबालकानां अस्याम् अवस्थायां विशेषरूपेण ध्यानं ददति ते तैः सह अस्मिन् समये परिश्रमं विशेषं कुर्वन्ति। सर्वे इच्छन्ति यत् अस्माकं बालः बाला वा साधुरूपेण पठेयुः श्रेष्ठतरं च अवस्थां प्राप्नुयात्। वैद्यः भवेत् अभियांत्रिकः वा स्यात् प्रबन्धकः वा स्यात् प्रशासने उच्चं पदं लभेत् प्राध्यापको वा भवेत्।

स्वपित्रोः कामनां पूर्यर्थं किं वा स्वस्वप्नान् साकारं कर्तुं कस्यापि बालकस्य छात्रस्य वा कानिचित् कर्तव्यानि सन्ति। तेषां सहाय्येन एव सः स्वजीवनं सफलीभवितुम् अल्पवयसि छात्राणां बुद्धि अपरिपक्वा भवति। अनेन स्व-भविष्यविषये ते सम्यक्तया विचारयितुं समर्था न भवन्ति।

अतः ते प्रायः स्वगुरुजनानां मातृपितृणां वा मार्ग-दर्शनं अनुशासनं मन्यन्ते। यद्यापि तेषां कथनं मार्ग-दर्शनम् अनुशासनं प्रताऽनादिकं प्रत्यक्षरूपेण कष्टप्रदमिव प्रतीयते तथापि परिणामे सर्वम् एतत् अतीव सुखोन्नतिदायकं च भवति तेषां कृते। अतः सर्वप्रथमम् इदमेव कर्तव्यमस्ति यत् स्व मातृपितृणां गुरुणां च आज्ञा परिपालनीया तेषां सदैवः आदरः करणीयः।

छात्राणां इयं अवस्था विद्याध्ययनस्य प्रमुखतां भजते अनेनैव ते विद्यार्थिनः कथ्यन्तेऽस्मिन् काले। यतोहि विद्या एव अर्थः प्रयोजनः येषां ते विद्यार्थिनः। अतः तेषां पुनीतं कर्तव्यं यत् अन्यानि सर्वाणि कार्याणि विहाय केवलं अध्ययने खलु रतः भवितव्यः। वस्तुस्थितिः अद्यत्वे खलु ईदृशी यत् छात्राः प्रायः अध्ययनात् विरताः सन्ति। सम्प्रति ते अनेकेषु अन्येषु कार्येषु रूचिं गृह्णन्ति। सदैव ते अधंपरम्परायाः नेत्राणि निमीलय अनुकरणं कुर्वन्ति।

विद्यायाः अध्ययनकालः वस्तुतः तपः कालोऽस्ति। अतः कालेऽस्मिन् सुखेभ्यः विरतिः भवितव्या तदैव जीवननिर्माणं भविष्यति। तस्मात् छात्रैः अस्यां अवस्थायां सर्वाणि सुखानि परित्यज्य विद्याध्ययने एव संलग्नः भवितव्यः। केनापिकविना विषयेऽस्मिन् साधु उक्तम्-

“क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थव्य चित्तयेत्।

क्षणे नष्टे कुतोविद्या कणे नष्टे कुतो धनम्॥

वस्तुतः विद्यार्थिजीवने समयस्य महत्त्वपूर्णं स्थानं वर्तते अतः सवैः छात्रैः सजीवने अमूल्यसमयस्य अधिकाधिकः प्रयोगः कर्तव्यः। अन्यं महत्त्वपूर्णं एतत् यत् तैः अस्यो अवस्थायां कदापि सुखानां अपेक्षा न कर्तव्या। अनेन तेषां जीवे अत्यधि कं परिश्रमं कुर्वन्ति ते स्वसम्पूर्णजीवने सुखम् अनुभवति। उक्तञ्च-

सुखार्थिनः कुतोविद्या विद्यार्थिनः कुतः सुखम्।

सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्॥

विद्यार्थिणां कर्तव्यविषये अस्माकं शास्त्रविद्भिः उचितमेव उक्तं यत् विद्यार्थिभिः सदैव विद्याध्ययनविषये काकवत् चेष्टा कर्तव्या। ध्यानं तेषां बकवत् भवितव्यं एवमेव तैः अधिकं कदापि न कर्तव्यं अपितु तेषां निद्रा श्वानवत्। अत्यंतञ्च कदापि अधिकमात्रायां भोजनं न कर्तव्यं अनेन स निद्रालुः भविष्यति।

छात्रजीवने कदापि आलस्यं न कर्तव्यम् यतो हि उक्तम् “आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।”

अध्ययनरतानां छात्राणां कृते स्वस्थशरीरस्य अतीव आवश्यकता अस्ति। ये छात्राः स्वास्थ्य-दृष्ट्या शरीरस्य उपेक्षां कुर्वन्ति ते संसारेऽस्मिन् किमपि कर्तुं न समर्थाः अतः छात्रैः सदैव कर्तव्यानां सम्यक् रूपेण अनुकरणं पालनं वा कर्तव्यम्।

तहरीन सईद्  
संस्कृतविशेषः  
तृतीयवर्षः



## उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः

संसारे सर्वेऽपिजनाः सुखं शान्तिं चेच्छन्ति। सुखं शांतिञ्च विना उद्योगेन पुरुषार्थेन वा न सिध्यतः। उद्योगेनैव मनुष्यो धनं विद्यां कलासु कुशलतां च लभते। येऽनुद्योगिनः सन्ति, ते सुखं समृद्धिं च न जातु लभन्ते।

भगवद्गीतायां भगवता कृष्णेन प्रतिपादितमेतद् यद् मनुष्यैः संसारेऽवश्यमेव कर्म कर्तव्यम्। अकर्मणि कदापि प्रवृत्तिं कर्तव्या पुरुषार्थेनैव जीवनं चलति।

नियतं कुरु कर्म त्वं, कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।

शरीरयात्रापि च ते, न प्रसिद्धयेदकर्मणः॥

संसारेऽनुद्योग आलस्यं वा मनुष्यस्य महाशत्रुः वर्तते, येन मनुष्यः सदा दुःखं प्राप्नोति। उद्यमिन एव दुःखानि त्यक्त्वा सुखं समृद्धिं च प्राप्नुवन्ति।

जगति दृश्यते एतद्यद् जनाः सर्वविधि सुखं कांक्षन्ति, किन्तु तदर्भं यत्नं न कुर्वन्ति। विना श्रमत्वेन किञ्चिदपि कदाचिदपि न सिध्यतीति सुनिश्चितम्। अत एवोक्तम्:-

उद्यमेन हि सिध्यन्ति, कार्याणि न मनोरथैः।

नहि सुप्तस्य सिंहस्य, प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

उद्यमेनैव निर्धना धनिनो भवन्ति, अज्ञानिनो ज्ञानवन्तः, अकुशलाः कुशलाः निर्बलाः सबलाः, दीनाः हीनाश्च सर्वविध सम्पत्तिसमन्विताः भवन्ति। महाकविः कालिदास उद्यमेनैव कविकुलगुरुः बभूव, वाल्मीकिव्यासादयश्च कविवराः संजाताः। सर्वमुद्योगेनैव सिध्यति। अनुद्योगेन भाग्यनिर्भरतया च दुःखमेव प्राप्नोति। अतः सर्वैः सर्वदा उद्योग करणीयः। उक्तं च:-

उद्यमः साहसं धैर्यं, बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।

षडेते यत्रवर्तन्ते, तत्र साहाय्यकृद् विभुः॥

ज्योतिः

संस्कृतविशेषः

द्वितीयवर्षः

## काकपुराणम्

अस्माकं प्राचीनग्रन्थेषु चातुर्यं प्रकटीकुर्वन्त्यः बहवः कथाः प्राप्यन्ते। नास्ति एतासु कथासु कापि अतिशयोक्तिः। आधुनिकचिन्तका अपि मन्यन्ते यत् काकः सर्वेषु खगेषु चतुरतमः। अहं प्रतिदिनं प्रातःभ्रमणाय निकटस्थ-उद्याने गच्छामि। अनेन न केवलं स्वास्थ्यलाभं भवति अपितु ज्ञानमपि वर्धते।

अहं प्रतिदिनं खगानां कृते किञ्चित् खाद्यान्नं प्रयच्छामि। एकस्मिन् दिवसे मया रोटिकायाः खण्डैः सह कतिपयान्वातादान् अपि प्रायच्छत्। अत्र लक्षितं काकस्य चातुर्यम्। स रोटिकायाः खण्डान् तु अखादत्, परं वातादानान् नैव प्रथमं तु एकं वातादानं स्वचञ्चुमध्ये गृहीत्वा स इतस्ततः अपश्यत्, तदन्तरं एकस्य पादपस्य आलवालस्य मृदुः मृत्तिकायां स तत् वातादानं गोपयित्वा अस्थापयत्। पुनः द्वितीयं वातादानं गृहीत्वा अन्यस्मिन् स्थाने तथैव अस्थापयत्। तस्य चातुर्यं दृष्ट्वा अहं विस्मित आसम्। अहो! एषोऽपि जानाति रोटिका-वातादानयोः मध्ये भेदः।

एतदपि अस्ति यत् काकः एकप्रभारस्य खाद्यपदार्थेन एव न संतुष्टो भवति न च लब्धद्रव्यान् संतृप्तो भवति; अपितु प्रयासरतोऽपि भवति। भोजनविषयकाः अस्य चेष्टाः अन्यखगातः भिन्नाः रोचकाश्च भवन्ति। शुष्का रोटिका अयः प्रथमं जलेन आर्द्रं करोति तदन्तरं कोमलीभूतां तां रोटिकां आनन्देन खादति। एकस्मिन् दिवसे अपश्यम् यत् एकः काकः सरोवरस्य जलात् किमपि निष्कासयितुं भृशं प्रयासं करोति स्म। किम् करोति? एष अनेन कौतूहलेन कृष्यमाणा इव अहं सरोवरं किञ्चित् अगच्छम्। यत् अपश्यम् अहं तेन मम आश्चर्यस्य सीमैव नासीत्। स काकः तु एकं मृतं मत्स्यं निष्कासयति स्म। सरोवरस्य पाषाणमयतटे तं स्थापयित्वा सः स्व सहचरीम् आकारयत्। सा न आगच्छत्। काकः यद्यपि मत्स्यभक्षणे व्यस्तोऽभवत् तथापि मध्ये मध्ये सहचरीं प्रति स्वकीयम् उत्तरदायित्वं स्मृत्वा ताम् आकारयति एव।

अस्ति निर्भीकः एषः। श्येनं दृष्ट्वा अन्ये सर्वेऽपि पक्षिणः भयेन आक्रान्तो भवन्ति। प्राणरक्षणार्थं इतस्ततः उड्डयन्ति। परं एषः महावीरः तेन सह तस्य समीपं एव साभिमानेन उपविशति। अपि च यदा अवसरो आगच्छति तस्य प्रतिरोधमपि करोति तं च ततः पलायनं कर्तुं विवशं करोति। नास्ति कोऽपि आश्चर्यं यत् श्येनापि अस्य प्रभुत्वं स्वीकरोति।

परम् अहो! ईश्वरस्य महिमा। कोकिला सदृशी लघुप्राणी एतं वञ्चयति। स गुप्तरूपेण स्वकीयानि अण्डानि अस्य नीडे स्थापयति। काकः तस्य भार्या द्वयोरेव अतिस्नेहेन तानपि पोषयतः। न कदापि अवगच्छतः यत् नीडे विराजमानाः सर्वेऽपि शिशवः तेषां न वर्तन्ते। मनसि कौतूहलं जायते यत् किम् कोकिला सारल्येन स्वकीयानि अण्डानि काकयुगलस्य नीडे स्थापयितुं सफला भवति? सामान्यतः तु लोका एकमेव मन्यन्ते। परं नास्ति एतत् सत्यम्। यथा मया पूर्वमेव उक्तम् यत् अहम् प्रतिदिनं प्रातः काले भ्रमणाय उद्याने गच्छामि। सरोवरस्य तीरे विद्यमाने प्रस्तरखण्डे उपविश्य प्राणायामं करोमि। तत्र बहवः वृक्षा अपि सन्ति। एकेन काकयुगलेन एकस्मिन् अश्वथस्य वृक्षस्योपरि परिश्रमेण स्वकीयं नीडं निर्मितं यतो हि प्रजननकालः समीपमेव आसीत्। एकदा एका कोकिला तत्र आगता। अयमेव उचितम् अवसरम् इति अवबुद्ध्य सा काकस्य नीडस्य समीपम् अगच्छत्। परम् अहो! तस्याः दुर्भाग्यम् काकः तु तत्रैव आसीत्। कोकिला ततः प्रफुल्लेन वेगेन प्राणरक्षणार्थम् अधावत्। काकः तु तम् अनु एवं धावति स्म यथा कोऽपि धृतदण्डः कोऽपि रक्षकः चौरं अनुधावति।

अन्ते कथयितुं शक्यते यत् नास्ति अत्र कोऽपि विसंवादः यत् अस्ति विचित्रो अयं लोकः अस्य प्राणिनश्च। यदि वयं अस्माकं कृत्रिमपरिवेशं विहाय किञ्चित् कालं प्राकृतिकपरिवेशम् अनुभवामः तर्हि ज्ञानं सुखं स्वास्थ्यलाभञ्च प्राप्नुमः।

डा० मीना कुमारी

व्याख्यात्री

संस्कृतविभागः

मिराण्डाहाउसः

## पर्यावरणस्य महत्त्वम्

अस्माकं जीवने पर्यावरणम् अति महत्त्वपूर्णम् अस्ति यदि पर्यावरणे प्रदूषणस्य आधिक्यं भवति। तर्हि पर्यावरणं दूषितं भवति।

प्रदूषणस्य चत्वारः प्रकाराः सन्ति:-

क. वायुप्रदूषणं ख. जलप्रदूषणम्

ग. ध्वनिप्रदूषणम् घ. भूमिप्रदूषणम्

पर्यावरणस्य मुख्याः घटकाः वृक्षाः सन्ति। वृक्षाः अस्मभ्यम् 'आक्सीजन' ददति। वायोः जलस्य च प्रदूषणं शुद्धम् करणीयम्। पर्यावरणम् अस्माकं जीवने स्वच्छ वातावरणम् स्वच्छजीवनञ्च करोति। तरवे नमोऽस्तु।

उर्वशी सोनी  
संस्कृतविशेषः  
तृतीयवर्षः

## स्वच्छभारताभियानम्

स्वच्छभारताभियानम् इत्याख्यं महाभियानं भारतगणराज्यस्य प्रधानमन्त्रिणा नरेन्द्रमोदी-महाभागेन उद्घोषितम् 2014 तमे वर्षस्य अप्रैल मासस्य द्वितीये (2/10/2014) दिनाङ्के स्वच्छभारताभियानस्य आरम्भः अभवत्। अस्मिन् दिनाङ्के भारतगणराज्यस्य पूर्वप्रधानमन्त्रिणां लालबहादुरशास्त्रिमहोदयस्य राष्ट्रपितुः महात्मागान्धिनः च जन्मदिवसत्वेन आभारतम् उत्सवः आचर्यते। तयोः महापुरुषयोः संस्मरणार्थं अस्मिन् दिने तस्य स्वच्छभारताभियानस्य आरम्भः अभवत्।

सरस्वती  
संस्कृतविशेषः  
तृतीयवर्षः

## किम् नाम जीवनम्?

जीवनं यदा निकषं, सर्वदा तत् स्वीकार्यम्।

जीवनं यदा क्रीडा, क्रीडत नित्यम्।

जीवनं यदा रहस्य, उदघाटय तं शीघ्रम्।

जीवनं यदा प्रतिज्ञा, कुरु तं पूर्णम्।

जीवनं यदा लक्ष्यम्, तत् अद्य हि ग्राह्यम्।

## पञ्चदेवाः

मातृ देवो भवः-

माता नाम नरस्य भक्तिराधिका माता परा देवता।  
माता शक्तिषु पूजिता सुखयुक्ता माता पराशक्तिदा।  
माता कल्पतरोरिवेह, फलदा माता सदा।

पितृ देवो भवः-

पिता न सर्वं खलु निर्मितं मे  
पुष्टं शरीरं हि शुभं च चेतः।  
शुद्धं चरित्रं ननु येन जातम्।  
स्वर्गश्च मोक्षश्च पितुस्सुगोहे।

आचार्य देवो भवः-

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।  
गुरुः साक्षात् परमब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

राष्ट्र देवो भवः-

राज्ञो वल्लभमामेसि कुलं भावयते स्वकम्।  
यस्तु राष्ट्रहितार्थम् प्राणांस्त्यजति दुस्त्यजानौ॥

नीलम  
संस्कृतविशेषः  
तृतीयवर्षः

## गीतायां विषाद-योगः

यतः श्रीमद्भगवता उक्तं कथितं गीतं वा अतोऽयं शास्त्र-खण्डः गीताभिहितः। अंशोऽयमस्ति शतसाहस्रसंहितारव्य महाभारतस्य भीष्म-पर्वणः। इयं उपनिषद्ग्रन्थानुरूपायामेव ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रं प्रतिपादयति। उपनिषच्छैल्यां कृष्णार्जुनयोः संवादभूमिकायां प्रश्नोत्तरोत्तरेण कर्म अनुशास्ति। अन्यशास्त्रेषु प्रवेशाय यथानुबन्धचतुष्टयोऽवज्ञेयः तथैव अस्य शास्त्रस्यानुबन्धा निर्धारिता एव। अधिकारी तु स्पष्टतयाऽर्जुनो वर्तते योऽऽर्तो जिज्ञासुरर्थार्यी ज्ञानी च दृश्यते। अस्य प्रासङ्गिकविषयो नीत्यात्मकोऽनुषाङ्गिकविषयश्च दार्शनिकः। अस्याः सम्बन्धः युद्धरूपकर्मभूम्या संपृक्तः। अस्य प्रयोजनमस्ति भवबन्धनेभ्यः मोचनमिश्वरार्पितबुद्ध्या कर्तव्यकरणम्। विषादस्य पृष्ठभूम्यां विश्वमंच उपस्थापितनाटकस्य प्रस्तावनाया सूत्रपातं कुर्वन्तं कर्मयोगरूपकं प्रस्तौति। यस्मिन् स्थले-स्थले ज्ञानयोगस्य भक्तियोगस्य च सम्मिश्रणं संलक्ष्यते। चिकित्साशास्त्रस्य चतुर्व्यूह इव, बौद्धानां चतुस्सत्य इव अर्जुनस्य विषादः विषादस्यसमुदायः विषादनिरोधः विषादनिरोधोपायभूतचतुर्व्यूहेन गीतिशास्त्रस्य प्रवृत्तिः दरीदृश्यते। कुलक्षयेण धर्मनाशे धर्मनाशेसति कुलस्त्रीदूषणादि विषाद-समुदयो वर्तते। यद्यपि युद्धस्य अकरणेण विषादनिरोधः सम्भवस्तथापि गीता स्वधर्मलक्षणं मत्वा नित्यत्वं प्रतिपादयन्ती युद्धमेव विषाद-निरोधोपायं चिकीर्त्तति। विउपसर्गयोगे षट्पदाधौधञ् प्रत्ययान्त निष्पन्न विषादशब्दः चिन्तस्य अननुकूलभावस्य उपायाभावस्य उपायनाशस्य कमाकर्म व्यवस्थितिज्ञानशून्यस्य वा वाचकः। विषादग्रस्त निराश उदासीनो विवेकहीनोऽर्जुनः अज्ञानजनित स्नेह-विच्छेदादिकारणैः समुद्भूतशोकमोहवशः रणार्णवे शास्त्राणि परित्यज्य परितिष्ठते। राज्यं गुरवः पुत्राः पौत्राः मित्राणि सुहृदः स्वजनाः सम्बन्धिनः बान्धवा एते मम एव अहं तेषाञ्च इति विचार्य दुःखितो भवति। यद्यपि सः स्वत एवयुद्धे प्रवृत्तः तथापि शोकक्तिः मूढो वा अग्निधूमन्यायेन विवेकज्ञानावृत्तोऽसौयुद्धात् विरराम एवञ्च विषादकारणानि प्रकाशितवान्। प्रथमाध्यायस्य द्वादशपद्यादरभ्य द्वितीयाध्यायस्य नवमपद्य (अपद्यानि) पर्यन्तमर्जुनः स्वसारथिं कृष्णं युद्धाध्यवसायं निरर्थकमाचष्टे। युद्धे स्वपितृतुल्यान् पितृण्यान् पितामहान् गुरून् मातुलान्, पुत्रान्, पौत्रान्, नप्तृन्, श्वशुरान्, सुहृद्-वर्गान् दृष्ट्वा अर्जुनस्य अङ्गानि शिथिलितानि, देहेविपथुः रोमाञ्चश्च समद्भूत गाण्डीवधनुः हस्तात् स्रस्तः। सः युद्धं प्रति समुदासीनो जातः। युद्धस्य परिणामभूत कुलनाश कुलाशजनित दोषकुलधर्मनाशेकुलस्त्रीदूषण त्वर्ण संकरता कुलक्रमनाशपिण्डकक्रिया भावादयः अर्जुनस्य हृदयं विक्षुब्धं कृतवन्तः। अस्यां स्थिन्यां सः राज्यप्राप्तिरूप लोभवशान् धार्तराष्ट्रान् हन्तुं श्रेयस्करं न मन्यते। प्रत्युततान् लोभात् भ्रष्टाचित्तान् वर्णयति ये कौरवकुलक्षयजनि तदोषं मित्रैः वा सार्धं वैरजातं पापं ना लोचयन्ति। परं राज्यसुखलोभेन स्वकुटुम्बनाशे सन्नद्धाः समुद्यताः वा। अतः सः तस्मान् पापाद् उद्धर्तुं योक्तकामः अशस्त्रः अप्रवीकारभवः रणभूम्यां मरणं वरं कथ्यते। तस्मै त्रैलोक्यराज्यमपि न रोचते किमुत अस्य लोकस्या। एवं सति निस्पृहं निराकांक्ष निष्क्रियं अप्रतीकारभावरहितमर्जुनं तद्विषादतः।

(प्राणि-मात्रं) बुद्ध्या प्रेम्णा वा ज्ञानेन भक्त्या वा कर्मपथं प्रति प्रचोदयति गीताशास्त्रं परमकल्याणलक्ष्यभूत वासुदेव नामकं पर ब्रह्मरूपपरमार्थं तत्त्वं विशेषत अभिव्यंज्य प्राणिभ्य एहलौकिककर्तव्यानुष्ठानस्यासाधारणमुपदेशं ददाति।

प्रथमाध्यायस्य द्वितीयपद्याद् द्वितीयाध्यायस्य नवमपद्यावत् (55 पद्यानि) प्राणिनां शोकमोहादयः ये जगतो बीजभूतदोषा वर्तन्ते तेषामुद्भवकारणानि दर्शितानि। अथवा अयमेवार्जुनस्य विषाद अथवा उपनिषच्छैल्यां प्रश्न-श्रृङ्खला वर्तते। अष्टादशाध्यायस्य 71 तमं पद्यमवधि भगवान् कृष्णः गुरुवत् अर्जुनमुपदिदेश। अन्ततो गत्वा स्वशिष्यमर्जुनं स्वाभिप्रेतं ग्रहीतं न वा तज्जातुमैच्छत्। ततः साम्यचितस्थः अर्जुनः 'करिष्ये वचनं तव' इत्युत्वा शास्त्रमात्रस्यार्थज्ञानफलं प्रदर्शितवान्। अत्रैव एकोऽन्य रूचिकरः शब्दः योग इति दर्शनीयः।

प्रथमाध्यायस्य समाप्तिः कृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोग इत्यभिधाय कृता। किञ्च, योगशब्दस्य प्रचलित द्वाचत्वारिंशत्

ारणासु का धारणात्र ग्राहचा इदं सर्वथा विचारणीयम् तिलतण्डुलन्यायेन विषादयोगोऽयं समस्तपदः विषाद एव योगः, विषादेन योगः, विषादाय योगः, विषादस्य योगः, विषादे योगः इत्युचार्य विश्लेषणीयः। अस्य समीक्षा योगदशब्दस्य व्युत्पत्तिलभ्यार्थतः रूढार्थतो वा कर्तव्या। युज् धातुः संयमेन, समाधौ, योगे संयोग मेलने उपाये वर्मादिधारणे ध्याने युक्तौ वा प्रयुक्तः। ततः अर्जुनस्य विषादेन संयमनं मेलनं ध्यानं विषादोन्मुखभावनं विषादे समाधानं वा अभिहितम्। किं वा योग शब्द ईश्वरेण योगः इत्यर्थे वाच्यः। पतञ्जलिना तु योगः चित्तवृत्ति निरोध इत्यस्मिन्नर्थे प्रयुज्यते परं गीतायै अयमर्थो नाभिप्रेतः। अतः विषादयोगः विषादेन योगः विषादत ईश्वरेण योग एवं वाच्यम्।

अन्यत्र गीतायामेव समत्वं योगः उच्येते योगः। कर्मसु कौशलं, 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' इत्यादि स्थलेषु योगशब्दस्य क्रमिकार्थे चेद् दृष्टिपातं कुर्याम तर्हि योगः सीमितार्थे न दृश्यते। चतुर्थाध्याये योगः बुद्धिवैभवे ज्ञान श्रितक्रियायां, षष्ठ्याध्याये योगः ससिद्धयर्थे ज्ञानिनः मानसिकवृत्त्यर्थे पूर्णसुखावस्थित्याम् उद्वेगहीनस्थित्यां समत्वभावे अभ्यासवैराग्याभ्यां मनसः संयतावस्थायामभिहितम्। औचित्यानौचित्यनिश्चयात्मकबुद्धौ योगशब्दस्य प्रयुक्तिरपि दर्शनीया। गीतायाः प्रकरणे पतञ्जलिनोक्तः-योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः, गणितशास्त्रस्य अङ्गयोगः, फलतिज्योतिषस्य नक्षत्रयोगः व्याकरणशास्त्रस्य धातुयोगः, कात्यायन श्रौतसूत्रस्य विश्वासधातीत्यर्थः कदापि नाभीष्टः।

अत्र अर्जुनस्य विषाद इव सहजमानवीयदुर्बलतामाश्रित्य महायोगेश्वरः कृष्ण एकं गूढतमं रहस्य उदघाटयत्। मोक्षदर्शिभिर्हेतुभिरर्जुनस्य मोहजं कल्मषं नाशयामास।

इदन्तु नासंगतं यत् विषादयोगः विषादापन्ना एतावती मूढावस्था यत्र किंकर्तव्यतायाः मोहस्य पराकाष्ठा च परिलक्ष्यते। यया प्रचोदितः भगवतः पद्यानामस्य मुखान् गीतामृतवाक् स्वत एव विनिस्मृता।

ब्रह्मविधालाभे विषादयोगस्य सार्थकता प्रतीयते यत् श्री कृष्णेन त्रिपुण्यां कर्मयोगेन ज्ञानयोगेन भक्तियोगेन त्रिषट्केषु (अष्टादशाध्यायेषु) प्रतिपादितम्। अत एव ज्ञानयज्ञेन पूजित उपासितः प्रीतः तुष्ट ईश्वरः (कृष्णः अर्जुनसदृशान्) प्राणिनः गीताशास्त्रस्योपादेयताम् प्रकटीकृतवान्।

संस्कृतविभागस्य

दिवङ्गताः प्राध्यापिकाः

डा. सुदेशनारङ्गमहोदयाः

## हास्यः कणिका

एकदा एकः चञ्चल प्रवृत्तिकः पुरुषः पण्डितसमीपम् आगत्य अवदत् "मम हस्ते कण्डूतिः दृश्यते।"

पण्डितः अवदत् -"तर्हि धनलाभः भविष्यति।

"मम कर्णे अपि कण्डूतिः दृश्यते।"

"एवं तर्हि कर्णाभरणलाभः भविष्यति।"

"मम कण्ठे अपि कण्डूतिः दृश्यते।"

तत् श्रुत्वा पण्डितः अल्पकोपमिश्रितेन स्वरेण उक्तवान्-"भगवान् त्वरया वैद्यं पश्यतु यतः भवतः चर्मरोगः अस्ति।"

गुंजन जैन

संस्कृतविशेषः

तृतीयवर्षः

## विद्याविहीनः पशुः

ज्ञानार्थकविद्धातोः विद्याशब्दः सिध्यति। यस्य कस्यचिदपि वस्तुनः सम्यक्तया ज्ञानं विद्येति कश्यते। वेददर्शनसाहित्य विज्ञानादीनां विषयाणां पठनं सम्यग् ज्ञानं च विद्येति अभिधीयते।

यद्यपिसंसारे बहूनि वस्तूनि सन्ति, परन्तु विद्यैव सर्वश्रेष्ठधनमस्ति। अत एवोच्यते:- ‘विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्।’ विद्यया मनुष्यः स्वकीयं कर्तव्यं जानाति। विद्ययैव मनुष्यो जानाति यत् को धर्मः, कोऽधर्मः, किं कर्तव्यम्, किमकर्तव्यम् किं पुण्यम्, किं पापम् किं कृत्वालाभो भविष्यति, केन कार्येण वा हानिः भविष्यति। स विद्याप्राप्त्या सन्मार्गम् अनुवर्तितुं प्रयतते। एवं विद्ययैव मनुष्यो मनुष्यो भवति। यो मनुष्यो विद्याहीनोऽस्ति स कर्तव्याकर्तव्यस्य अज्ञानात् पशुवद् आचरति, अतः स पशुख्यिभिधीयते। ‘विद्याविहीन पशुः इति।’

विद्या सर्वेषु धनेषु श्रेष्ठमस्ति, यतोहि विधैव व्ययेकृते वर्धते। अन्यद् धनं व्यये कृते क्षयं प्राप्नोति। अत एवोक्तम्:-

न चौरहार्थं च भ्रातृभाज्यं, न राजहार्यं न च भारकारि।

व्यये कृते वर्धते एव नित्यं, विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्॥

विद्यैव जगति मनुष्यस्य उन्नतिं करोति। दुःखेषु विपत्तिषु च तस्य रक्षां करोति। विद्यैव कीर्तिं धनं च ददाति। विद्या वस्तुतः कल्पलता विद्यते।

विद्ययैवमनुष्यः सर्वत्र सम्मानं प्राप्नोति। राजानोऽपि तस्य पुरस्तात् नतशिरसोभवन्ति। विद्वांस एव संसारस्य दुःखानि दूरीकुर्वन्ति। त एव उपदेशका विचारका ऋषयोमहर्षयो मन्त्रिणो नेतारश्च भवन्ति। विद्वांस एव विविधान् आविष्कारान् कृत्वा संसारस्य श्रियं वर्धयन्ति। लोकान् च सुखिनः कुर्वन्ति। अतः सर्वेरपि आलस्यप्रमादादिकं त्यक्त्वा विद्याध्ययनम् अवश्यं कर्तव्यम्। विद्ययैव मोक्षप्राप्तिः भवति। उक्तं च गीतायाम्-“ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।”

ज्योति  
संस्कृतविशेषः  
द्वितीयवर्षः

## वनमहोत्सवः

कृषेः समस्यायाः समाधानं वर्षणम्।  
वर्षायाः समस्यायाः समाधानं वृक्षारोपणम्।  
पुण्याय कुरुत परोपकारम्॥  
पर्यावरणाय वृक्षोद्धारम्॥  
दानस्य महिमा अपरम्पारम्॥  
वृक्षदाने च हर्षमपारम्॥  
वृक्षदानम् खलु महादानम्॥  
अनेन भवति जनकल्याणम्॥  
वृक्षारोपणम् महाकल्याणम्।  
काशी-काबा-तीर्थसमानम्॥  
परपीडनस्य पापं वारयन्तु॥  
जनसंख्याविस्फोटः नाशयन्तु।  
वृक्षपादपनवसम्पदां वर्धयन्तु॥

टिकेश्वरी  
संस्कृतविशेषः  
तृतीयवर्षः

## किम् कर्तव्यम्

किं कर्तव्यम्? परोपकारः।  
किं कर्तव्यम्? हितकर वचनम्।  
किं श्रोतव्यम्? मधुर वचनम्।  
किं विज्ञेयम्? निज कर्तव्यम्।  
किं कर्तव्यम् संकटकाले? धैर्य-धारणम्।  
किं कर्तव्यम्? मौन धारणम्।  
किं कर्तव्यम् दुर्जन संगे? विद्याध्ययनम्।  
किं कर्तव्यम् जराकाले? भगवत् भजनेम्।  
किं कर्तव्यम् अन्तिमकाले? ईश-स्मरणम्।

निशा  
संस्कृतविशेषः  
तृतीयवर्षः

## उदारम् आचरणम्

रामायणस्था घटना एषा। रामरावणपक्षयोः घोरं युद्धं प्रवर्तते स्म। तदवसरे एकस्मिन् दिने लक्ष्मणमेघनादयोः युद्धं जातम्। लक्ष्मणेन प्रयुक्तः बाणः मेघनादस्य हस्तम् अकर्तयत्। सः हस्तः रावणस्य अन्तः पुरे मेघनादस्य पत्न्याः सुलोचनायाः पुरतः अपतत्। तं हस्तं दृष्ट्वा दुःखं सोढुम् अशक्नुवन्ती सुलोचनाय विलपितवती-

“रणरङ्गं प्रति प्रस्थितस्य आर्यपुत्रस्य अयं हस्तः अद्यैव पूजितः आसीत् मया इति।

सुलोचना सङ्कल्पं कृतवती- ‘अहं सह- गमनं करिष्यामि’ इति। ततः चितानिर्माणाय सन्नाहः आरब्धः। तदा समस्या उपस्थिता ‘शिरसः अविद्यमानत्वे दाहसंस्कारः कथं प्रवर्तेत? मेघनादस्य शिरोभागः तु रामसमीपे अस्ति’ इति। समराङ्गणात् मेघनादस्य शिरः कथम् आनेतुं शक्येत इति सर्वेषां चिन्ता। तदा रावणः अगर्जत् “त्वया चिन्ता न कार्या। अहम् इदानीम् एव गत्वा मेघनादस्य शिरः आनेष्यामि। येन मेघनादस्य शिरसः द्वेदः कृतः स्यात् तं सजीवं बद्ध्वा तव पादतले पातयिष्यामि” इति।

तदा मन्दोदरी अवदत्- “वत्से! महान्तः योद्धारः एव प्राणवियोगं प्राप्तवन्तः

चेदपि एतैः मिथ्याभिमानधरैः इतोऽपि विवेकः न प्राप्तः। शत्रुपक्षात् मेघनादस्य शिरसः आनयनम् एतेषु कोऽपि कर्तुं न शक्नुयात्। मम तु भाति-तत् आनेतुं स्थितः एकः एव उपायः-

त्वया स्वयमेव गत्वा तत् आनेतुं प्रयासः करणीयः इति।”

तत् श्रुत्वा मन्दोदरी अवदत्- “नारीणाम् अवहरणम् अपमाननं चा दानवाः कर्तुम् अर्हन्ति, न तु धर्मनिष्ठाः रामादयः। ते भवन्ति धर्ममार्गानुयायिनः।

अतः एषा निर्भयं गन्तुम् अर्हति तत्र” इति।

ततः सुलोचना धैर्येण श्रीरामस्य दर्शनाय प्रस्थिता। रामपक्षीयाः विचारणात् तस्याः नाम आगमनकारणं च ज्ञात्वा ताम् आदरेण रामसमीपम् अनयन्। श्रीरामः तस्यां महान्तम् आदरं प्रदर्शयन् मेघनादस्य अन्त्यसंस्कारं निमित्तीकृत्य एकं दिनं यावत् युद्धस्य विरामम् अपि घोषितवान्।

श्रीरामस्य एतं व्यवहारं दृष्ट्वा शत्रुपक्षीयाः अपि तस्य श्लाघनं कृतवन्तः।

प्रीतिः

संस्कृतविशेषः

तृतीयवर्षः

## मौनम्

मौनं सर्वार्थसाधकम्।  
मौनं विधेयं सततं सुधीभिः।  
मौनिनः कलहो नास्ति।  
मौनं स्वीकृतिलक्षणम्।  
मौनं सर्वसुखप्रदम्।  
मौनं विश्वजिद् ध्रुवम्।  
विभूषणं मौनमपण्डितानाम्।  
मूर्खो हि शोभते तावत् यावत् किञ्चिन्नभाषते।

## व्यर्थः

सत्कर्म विना धर्मः व्यर्थः।  
तैलं विना दीपकः व्यर्थः।  
जलं विना मेघः व्यर्थः।  
दक्षिणां विना यज्ञः व्यर्थः।  
श्रद्धां विना भक्तिः व्यर्थाः।  
जलं विना नदी व्यर्थाः।  
गुणं विना रूपं व्यर्थम्।  
साहसं विना अस्त्रम् व्यर्थम्।  
हरिभक्तिं विना जीवनं व्यर्थम्।

निशा  
संस्कृतविशेषः  
तृतीयवर्षः

## विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

परमेश्वरेण जगति समुत्पादितेषु सर्वद्रव्येषु विद्यैव सर्वश्रेष्ठं द्रव्यम्। विद्याद्रव्येण विहीनः यो मानवोऽस्ति सः असभ्यः मूर्खः कथ्यते। ज्ञानेन विना यथा पशुः धर्माधर्मयोर्विचारं कर्तुं न शक्नोति तथैव मानवोऽपि विद्यया विहीनः पापपुण्ययोः कर्तव्याकर्तव्योविचारं कर्तुं न पारयति। विद्याविहीनो मानवोऽन्ध एव निगद्यते। उक्तञ्च-

“इदमन्धतमः कृतस्नं जायेत् भुवनत्रयम्।

यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥

अत्र शब्दाह्वयं ज्योति विद्यैव। यदि नामेयं विद्याज्योतिरस्मिन् जगति न भवेत् तर्हि जगदिदमखिलमपि अन्धकारावृत्तं सम्पत्स्येत। विद्ययैवास्य जगतः यावज्ज्ञेयं तत्त्वं तावदखिलं सम्प्रकाशयते किं नामतद्वस्तु यद्विद्यया न साध्यते। यत्कार्यमन्येन द्रविणदिनपि न साध्यते तत्कार्यं विद्याद्रविणेनानायासेन साध्यते। अत एव विद्याधनस्य सर्वेतरधनेभ्यः प्रधानतोक्ता कविभिः। तथाहि- “विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्।”

इयं च विद्याधनस्य प्रधानता यदन्यानि धनानि व्ययीकृतानि क्षयं यान्ति, किन्तु विद्याधनं व्ययेन संवर्द्धते। एतद्वैशिष्ट्यं विद्याधनस्य यद्दानात्प्रवर्द्धते सञ्चयञ्चापक्षीयते तथा चोक्तं कविभिः-अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति। व्ययतो बुद्धिमायाति क्षयमायाति सञ्चयात्॥

विद्याधनस्य इयं विशेषता यदिदं धनं न केनापि चोरयितुं शक्यते। क्रूरोऽपि कोऽपि नरपतिः विद्याधनं हर्तुं न प्रभवति।

समीचीनमुक्तं केनापि सुकविना-

“न चौर्यहार्यं न च राजहार्यं न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।

विद्याबलेनैव महर्षयः महाकवयश्च अमृता भवन्ति अमरपदवीं वा प्राप्नुवन्ति। अत एवोक्तम् विद्ययाऽमृतमश्नुते। चतुर्वर्गस्य फलप्राप्तिसाधनमपि विद्यैव। विद्या विनयं ददाति विनयेन मानवः पात्रतां याति पात्रत्वात् धनमाप्नोति। एवं चतुर्वर्गस्य प्रथमो वर्गः धनरूपः विद्ययैव प्राप्यते। अनेन मानवो दानं ददाति तेन च पुण्यार्जनं करोति। उक्तञ्च-

“विद्याददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।

पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद् धर्मः ततः सुखम्॥”

अविश्रान्तश्रमम् अनवरतं गुरुणा वितरिता विद्या सर्वात्मना आत्मसात्करणीया। सुखाभिलाषिकाशच्छात्रा विद्यामृतं न पिबन्ति। तथा च समयगुक्तम्-

“सुखार्थिनो कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतः सुखम्।

सुखार्थी चत्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चत्यजेत्सुखम्॥”

विद्यया मानवः विपुलां कीर्तिं धनञ्च लभते। को न जानति यद् दिवंगतः रविन्द्रनाथ ठाकुरः, राधाकृष्णो वा विद्यैव विपुलं यशः प्रभूतं च धनं प्राप्नुवन्तः विद्यायाः प्रशंसायां केन्चित् कविना समुचितमेवाविहितम्-

“मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम्।

लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या॥”

प्रगतिः

संस्कृतविभागः

द्वितीयवर्षः

## शूरा रत्नावली

जयसलमेरस्य राजा रतनसिंहः। तस्य पुत्री रत्नावली शौर्येण अप्रतिमा। कदाचित् अल्लावुदीनस्य सेनापतिः मल्लिकाफरः रतनसिंहं पराजयितुं ससैन्यम् आगतः। युद्धम् आरब्धम्। राजकुमारी रत्नावली जयसलमेरस्य सैन्यस्य नेतृत्वम् उढवती। युद्धारम्भानन्तरं द्वित्रिदिनाभ्यन्तरे एव मल्लिकाफरः शत्रुहस्तं गतः अभविष्यत्। किन्तु दैवयोगात् सः कथञ्चित् आत्मानं रक्षन् रणरङ्गात् पलायनम् अकरोत्। अतः सः ज्ञातवान् यत् शौर्येण एतत् सैन्यं जेतुं न शक्यम् इति। तस्मात् सः कुतन्त्रम् आश्रितवान्। कस्मैचित् निर्धनाय वृद्धाय राजपूताय सुवर्णमुद्राग्रन्थिं दत्त्वा सः अवदत्- “दुर्गस्य अन्तः गमनाय मार्गं दर्शय” इति।

वृद्धः प्रतिवचनं न अवदत्। अतः मल्लिकाफरः पुनः अवदत्- “यदि भवान् दुर्गस्य अन्तः गमनाय मार्गं दर्शयेत् तर्हि पुनरपि प्रभूतं धनं दास्यामि” इति। अस्तु चिन्तयिष्यामि इति अवदत् स वृद्धः मल्लिकाफरीयान् काश्चन सैनिकान् दुर्गस्य दुर्बलस्थानं प्रति नीतवान्। मल्लिकाफरः-“अस्मान् शस्त्रसङ्ग्रहालयं प्रति एव नय” इति उक्त्वा पुनरपि पञ्चसहस्रं सुवर्णनाणकानि अयच्छत्।

सः वृद्धः सर्वान् सैनिकान् दुर्गस्य अन्तः नीत्वा एकं मार्गं प्रदर्श्य एतेन एव मार्गेण अग्रे गच्छन्तु भवन्तः। अभीष्टं सिद्धं भविष्यति इति अवदत्।

सर्वे मल्लिकाफरसैनिकाः महता उत्साहेन अग्रे गतवन्तः। क्षणाभ्यन्तरे तेषाम् उत्साहः समूलं विनष्टः। यतः ते सर्वे सैनिकाः तृणपर्णादिभिः आच्छन्ने गर्ते पतिताः आसन्। गर्ते पतनात् केषाञ्चित् हस्तपादादयः भग्नाः। अन्ये केचन विशेषतः व्रणिताः अभवन्। गर्तात् उपरि आगन्तुं केनापि न शक्तम्। सः वृद्धः अवञ्चयत् इति अजानत् ते।

तावत् गर्तस्य उर्ध्वभागात् रत्नावल्याः ध्वनिः श्रुतः- “अयि दुर्गगामिनः। कुतन्त्रेण अस्मदुर्गं प्रवेष्टुं प्रयत्नं कृतभवद्भिः योग्यम् एव दण्डं प्राप्तम् अस्ति। रजपूतकुले जाताः कदाचिदपि विश्वासद्रोहं कर्तुं न अर्हन्ति। भवद्भिः धनग्रन्थिः दत्तः यत् यत् सः आर्यः वृद्धः माम् अवदत्। अतः मया एव सः सूचितः तेन किं करणीयम् इति। तस्य परिणामः एव भवद्भिः एषा दुर्गतिः प्राप्ता इति।

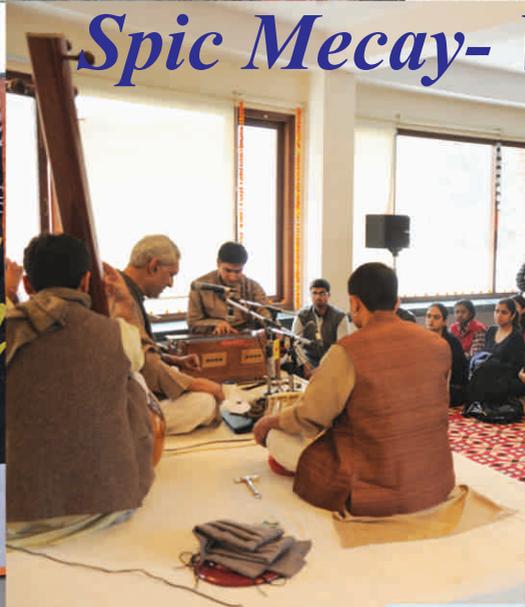
टिकेशवरी जयसवाल

संस्कृतविशेषः

तृतीयवर्षः

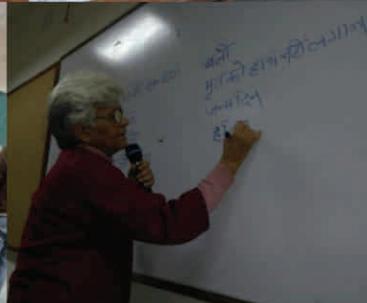


## Spic Mecay- Virasat





*B.el. ed..., Bengali*





**COMPUTADA**

**Miranda House**  
University of Delhi

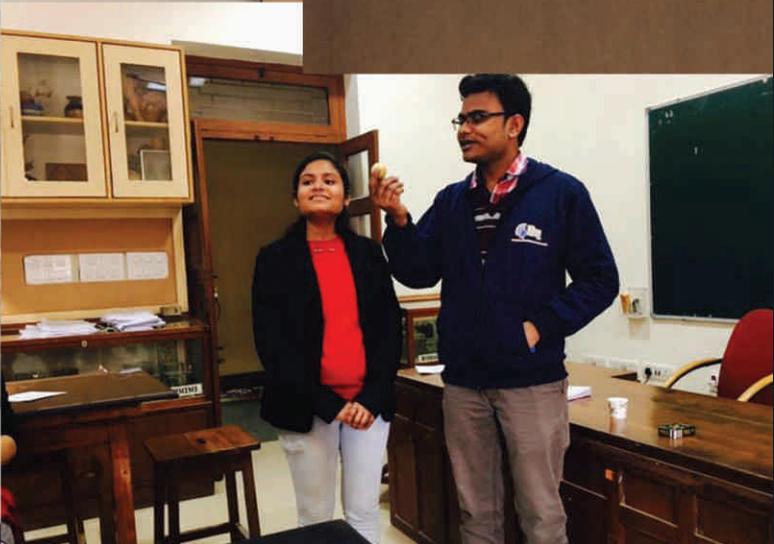
**Seminar on  
PLAGIARISM**

Dr. Ravi Kant, Director, Centre for Distance Education, Miranda House, University of Delhi, will be the guest speaker for the seminar on Plagiarism. The seminar will be held on 22 September 2016, 10.00 am onwards, Room No. 145 CLT.

22 September 2016  
10.00 am onwards  
Room No. 145 CLT



*Computer Science, Koshika & E.O.C.*





रेडियो सामुदायिक केन्द्र का उद्घाटन



हिंदी विभाग, मिरांडा हाउस  
27-28 फ़रवरी 2017

**साहित्योत्सव**  
27 फ़रवरी 2017

पहचान  
(वार्षिक हस्तलिखित पत्रिका का लोकार्पण)

डॉक्यूमेंट्री प्रदर्शन  
योग्य अश्वथर - संगीत नाटक अकादमी द्वारा तैयार

रचनात्मक कार्यक्रम  
कविता पाठ प्रतियोगिता, प्रश्नोत्तरी (क्विज़)

28 फ़रवरी 2017  
रचनात्मक कार्यक्रम  
आशुभाषण प्रतियोगिता  
पावर पॉइंट प्रेजेंटेशन

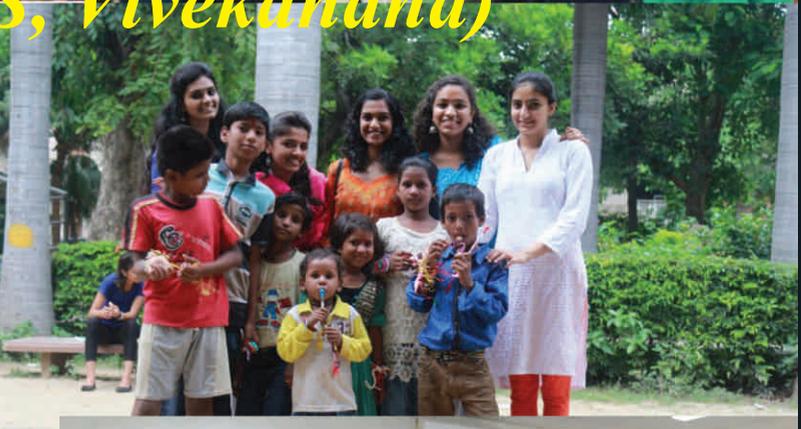
संस्कृत - अकादमी वाली संस्था  
एन सी सी (एनएसएससी)

प्रयोजक





*Social Concern...  
(WDC, NSS, Vivekanand)*





# संस्कृत विभाग





## *Eco, Jigaysa, Manzar*



A lucidly written book  
introducing economics to people  
who are unfamiliar with mathematics

**ECONOMICS WITHOUT TEARS**  
A NEW APPROACH TO  
AN OLD DISCIPLINE

ASHOK SANJAY GUHA

AVAILABLE NOW



**2016-17**

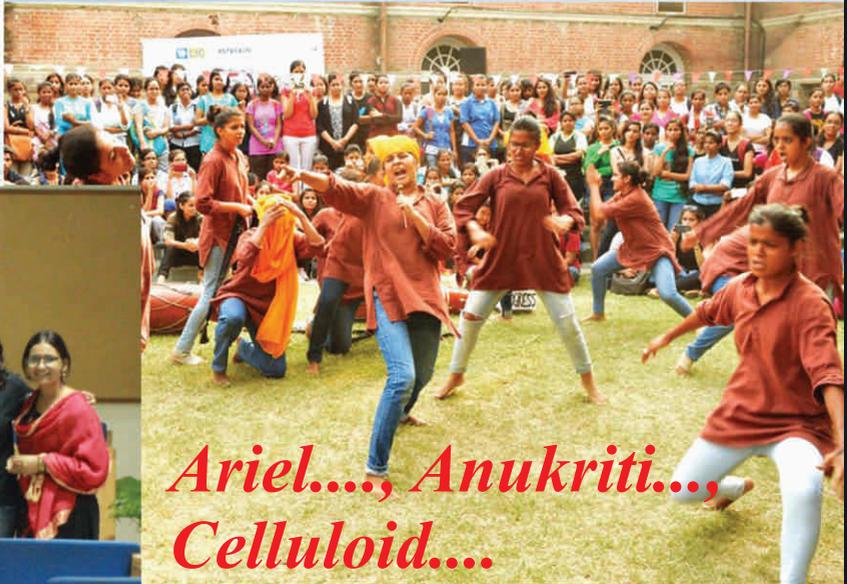






*B. A. Programme,  
Mridang, Geetaganli*







## I See You I See Myself

---

It was 7:26 am. As I ran out of the cab, late for my flight, I could sense my heart racing. Managing to check in, I finally began to relax and feel excited about my school reunion, when, out of the blue, Dia's favourite song- Pink Floyd's Comfortably Numb came on the radio. How she used to smile each time she mentioned them. "Bro, you have no idea how amazing Pink Floyd is, I mean they're a universe in themselves". Amused, I would respond, "Dia, we're all little universes in ourselves."

Stepping into the airplane, I was lost in thought. One was particularly nagging, begging me to let it out. It was a memory I had devoted the last several years to erasing, forgetting, at least blurring. But my control weakened and it came back to me: our last holiday, in Shimla, where I had lost Dia, forever.

Refusing to sink into that flashback, I searched for distractions and grabbed my copy of Norwegian Wood. I forced myself to think of the trip ahead. It was my first vacation after two years of toiling in an MNC I didn't give a shit about. Like most other engineering grads and MBA pass-outs, I had learned to make a living without a life. Thirty two, I was monotonous to myself and sarcastic to everyone else.

"Hello son! Can I look at the blurb of the book you're reading?"

I turned to my left and found the poser of the question to be a man in his late 50s, with big, baggy eyes and a T shirt which read "On the road to Nirvana". Even I love Nirvana, but a shirt with trippy patterns and Kurt Cobain on the loose? Weird.

Not happy with this intrusion, I turned towards him and snapped that he could Google the synopsis.

"Stories are better told than read", he answered placidly.

Was that wisdom that comes with age? I was confused.

"I have a story to tell, and I have a question to ask. Should I?" The old man continued without my consent. "One fine morning John wakes up from his dream. His body is as cold as ever; he has no say or control over the numb tones of blue into which his body is paralyzed each time Lucy's voice comes back to haunt him".

I could sense the pain in his voice as he continued. "Both John and Lucy had plans for that night. Their parents were away on a weekend trip and both had capitalized on the opportunity. Lucy told John she was ordering in pizzas for a party. John, always uncomfortable with her choice of friends, told her to be careful as he would be out till midnight. 'I am fifteen, bro!' Lucy had said, 'I can take care of myself'. And she hugged him as he stepped out of the door, 'I love you, my fussy, old, dearest elder brother!'"

The old man teary eyed, continued, "John received a panicked call from Lucy and rushed home as fast as his car would take him. But he was still too late. He was welcomed home by the sight of broken vodka bottles and Lucy's bruised half-naked body.

"He still cries in his sleep, after four decades. He had rushed out so quickly that he hadn't even waited to put on the shoes he had left under

## TALES TALL AND SHORT

his girlfriend's bed. He had been fond of the girlfriend, but after that night, she was indelibly associated with the horror in Lucy's voice. Not her fault. He blamed himself; his parents had left him in-charge; he shouldn't have left Lucy alone. His hands have been too cold to touch another girl since then. Nightmares torment him in his sleep; he had not a moment of respite."

I couldn't look at him. Dia's face surfaced before my eyes. It was the 14th of July, 2012. Her pink dress was torn and her hair was scattered about her face. Bruises and red marks stood out against the white of her skin. Why wasn't I there when those monsters took her life? That sight had tortured me for years; no amount of therapy could assuage my guilt or remorse. A peaceful sleep itself had become a dream, nightmares had

become passé. Even after four years, something or the other would drudge up the sight, and I would sink back into my personal hell hole.

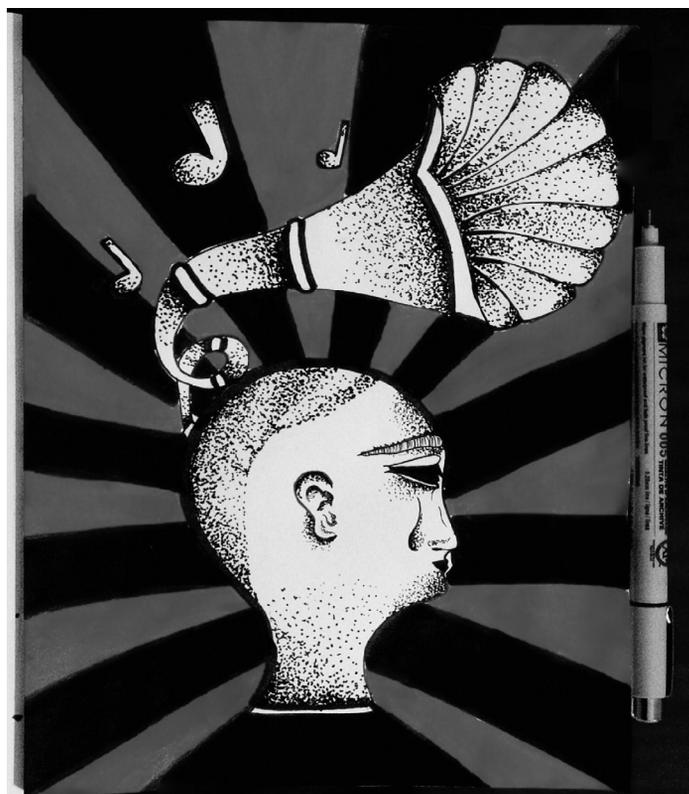
"Son? What happened?"

No sarcastic repartee rose to my lips. Nothing.

"What happens to the soul when the body is gone? And what happens to the soul when you know you're dead while you're alive?"

Involuntarily, I exclaimed, "I have been dead since 14th July 2012".

*Trisha Jha*  
*B.A. (Hons) History, II Yr*



**Nimisha Randhar**  
**Ist Year, Economics Hons**

## Boomerang

---

Avinash Roy looked spiff as he arrived for his new job interview. With a fantastic CV and a brilliant academic record, Avinash was sure to bag this job. He had worked, till that day, at an advertising firm, and prior to that, with a business magazine. He had been respected at both places which perhaps only fuelled his arrogance. Rudeness and bullying had been part of his character well from his school days.

During his days at Doon, Avinash, the star student, had rarely tolerated dissent or competition. It would have been difficult to tell that he had no real friends, for all his classmates followed his lead. Easy to mistake for popularity.

A new boy joined in the year 2000. Ali Dalal limped, was shy, but brilliant and witty. To Avinash Roy, he was an obvious competitor. It wasn't long before the class was following Avinash in mocking Ali. The teachers' original request to the boys to include Ali in all their activities was easy to circumvent—he could not run or play like the rest of them. Seeing Avinash trip Ali up as he carefully negotiated the stairs became a daily joke. The locker room became a place of endless misery for Ali. While the

jibes and taunts seemed to issue from almost everyone, Ali could clearly see Avinash egging the others on. For three years, he endured it, growing quieter and quieter, dropping gradually off the radars of even the teachers who had once remarked on his potential. He was close to suicide when his parents pulled him out of the school. Avinash Roy gloated on his final success over the potential competitor: 'Who did the bastard think he was, anyway?'

In a surprising, but pleasant twist, Avinash was offered the job without an interview. It had to be his exceptional CV, he reasoned, a triumphal smile hovering around his lips as a secretary handed him the contract. It stipulated a compulsory contract of three years with the company, but at the salary he was being offered, Avinash Roy didn't blink before signing on the dotted line. On the other side of the door, a triumphal smile hovered around the lips of the CEO, a shy man with a limp.

*Archana Anand*  
*B.A. (Hons), History, II year*

## Lover of A Serial Killer

---

1968.

Police Headquarters.

Bombay, Maharashtra.

“I love him.” I tell them. “No, it was not just lust for me.”

“He is a bloody killer! A rapist! A robber!” He screams at me before drenching my face and my tied arms with a whiplash of cold water.

Sitting in a broken wooden chair, my arms fastened with dirty, coarse ropes and a stream of bright yellow light hovering over my head, making me dizzy and filling my mind with a psychedelic haze, I announce again, “I LOVE HIM! And that’s why I let him go. He is gone now. He is like vapour! Poof! He does his work and vanishes into the night. He is *Shakti*, you *kutrā*, Kulkarni! Go, you scoundrel, *halakata*, try and find him!”

I have a sudden urge to laugh at Kulkarni! They will never be able to find him. He is a *sadhu* and a *bahurupiya*. They can never get him!

I laugh. I roar!

Suddenly, the dingy cell is filled with smoke. It is making me drowsy. I can’t keep my eyes open anymore. Kulkarni is swaying to and fro and I can see multiple clones of him. My head hurts. I hear bells tolling inside my head. When I wake up, I recall dumping my head on the old, black table with a thud and falling asleep.

They called him ‘Raman Raghav’, ‘Psycho Raman’ and what not! Some had even coined a “real” name for him- Sindhi Dalwai. Fools! All of them! *Murkhaa!*

I know his real name. He had told me once while we were making love at my *kholi*. The kind of passionate lover he was, he simply used to come into my *kholi* late in the night and rip my blouse off and would not stop until we could hear the neighbourhood roosters croaking and heralding the nemesis of our pleasures. That night, he had brought a gold chain with a huge *naga* attached to it. I snatched it from his pocket and began to fasten it around my neck. He bit my breast and tore off the chain. He said that it was *kanoon*. All of what he used to loot was only meant for his belly. Sex and loot were like fuel to the engine of his life. As a deep pain surged in my breast, I screamed out his name with bitter pleasure, ‘Raman!’ I said. He nibbled my ear and uttered ‘Anandan’. ‘*Mi Anandan*. My *amma* had christened me. She died too soon. Jaah! But my baba, Anandan owes his life to him. He taught me all the tricks! He went to jail but taught me everything before going. He taught me about the *kanoon* that runs Anandan’s life. He was the one who had taken Anandan to *Shakti*. Asserted that Anandan is the power of *Shakti!*

I had several customers, but none like him. All came, bit me and went away, but, he was different. He didn’t go to any other for five full years. I used to keep asking him to take me away and marry me, but he always said, “Kanta, *tumhī āhāta veshya*, you are a woman like all of them were. Anandan needs his fuel, you whore, not a woman!”, before he serenaded the insides of me with another of his vigorous cascades, leaving me writhing in pleasure. He never got anything for me. He said that he didn’t get much all the time.

Why did he steal?

I never asked him.

“You are insane!” I once told him.

He burst into laughter and said, “I am not mad. You all are mad! Come here, veshya saali! Theft is good. It’s good. You are a whore since you were 10, I am a thief since I was born into this goddamned aberrant world! My baba has given Anandan his talents! Samajalē?”

The world is convoluted. So is Anandan! Haa... aaah!” He buried his head in my bosom and tore at my breast.

“That chutiya called me a chutiya. He was drinking at night and I was just watching him. I called him. Thrice. He didn’t come. I called him again. He came out to me and called me chutiya. I felt hurt. I bashed his head with my ankada. I didn’t kill him. The ankada was blunt. He died. What a strange way to greet a guest? By dying! Ha..ha..hahaha! Chutiya!” He said before he dove in again.

Why did I love him?

“Because he was a lone wolf. Just like Kanta. He was far more intense than any other man I’d ever fucked in my life! His eyes were cold, but he was honest to his principles.” I told Kulkarni when I regained my senses. That hefty police-woman held me by hair and pulled my head down as she asked, “What else did he tell you? Bōlū”

“He is a werewolf. He hunts at night. Me? I live to be hunted down by him. He is a very sensitive man and gets hurt very easily. He loves and appreciates everyone. Māzha hero! Rajesh Khanna samāna. It’s only these fools, these foolish women who don’t want him around themselves. They like men who chase them, he says. So, he chases them. They die as soon as

they see him, compelling him to sleep with their dead bodies, *dēva*.”

“This woman has gone berserk!” Kulkarni said.

“He is a keen observer. He researches for nights together. The night he got that gold chain, he told me that he had been researching on that woman for 3 nights. Every night he used to peep into her hut, she was awake. *Sali*, she never slept at all! One night she did. So, he went inside and got her chain and the two paisa that she had. But he didn’t sleep with her. He came to Kanta that night.”

“Stupid whore! She is blushing with pride. *Pudhīla*? Go on.”

“He was a man of principle, a man of his *kanoon*. He taught me to never smoke in front of an officer. He used to chide me when he smelt an unclean petticoat on me. He simply ripped it off my body. Once he told me that he had to smash a waiter’s head because he had dipped his thumb in his glass of water. He hated being unclean. He said that everything is calculated. Should be calculated.”

“Hm. What does he like? Any special thing?”

“*Māzha* hero loves chicken. He never ate what I cooked for him, but always loved my chicken curry with coconut dressing. Those nights used to be the best ones!”

“Does he fear anything?”

“*Nako*. He is a *marad*! He says that his moustache is where he stores his masculinity. He never wears a creased set of trousers. He says that the police-*wallahs* are bent upon transforming him into a woman, but he will never fall into their trap. Never ever. He is like the chilly wind. He will surge up your back and cause you great pain but you will never be able to get hold of him. He

## TALES TALL AND SHORT

fears nothing. Nothing at all.”

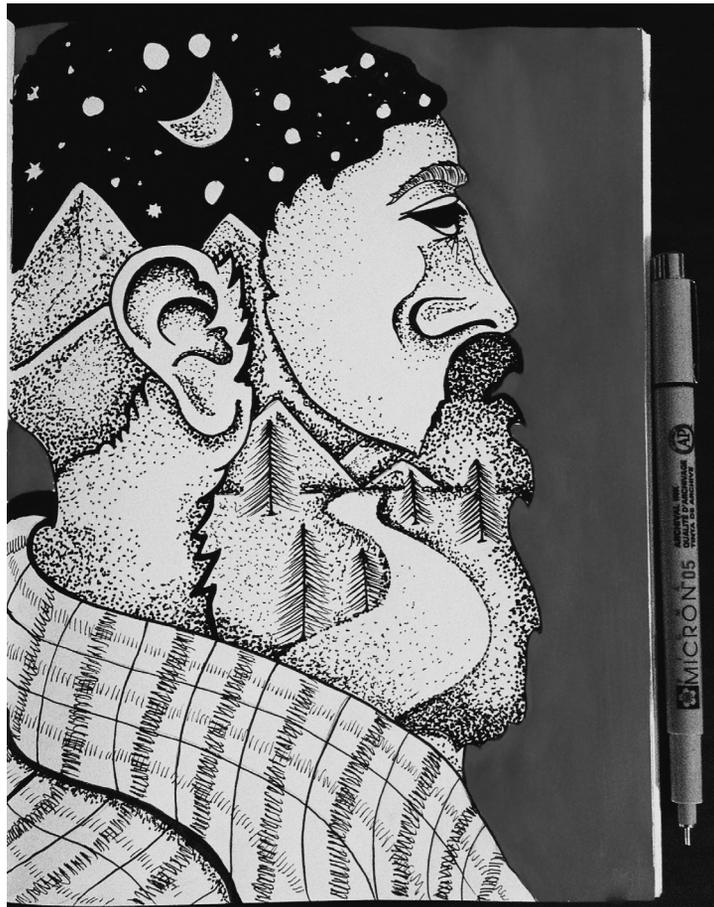
Kulkarni slaps my face hard, multiple times. My head feels weak again. Blood is gushing out of my mouth and I don't sense anything anymore. The policewoman has also left. I fall asleep.

Next night. 3am.

I can't sense anything. There is something in my mouth. I have to spit it out. It's thick, fresh blood. I spit some more out. Where am I? “Anandan?” I can't see anything. There's

someone approaching me. The figure of a *sadhu* – long beard and moustache but cropped hair, a *trishul* in his hand. He comes closer and I feel something very cold piercing my skull. It all falls silent. I hear nothing but a long beep and his retreating footsteps.

*Vanya Lochan*  
*B.A. (Hons) History, III yr.*



**Nimisha Randhar**  
**Ist Year, Economics Hons**



They slept in the small room on the mezzanine floor, in the light of a poor man's candle stub. The air was hot and smelling of sweat of the room and dried blood of the streets. The stub was now a warm puddle and in the midst of it was a small flame dancing its last dance. The flame burned itself. Everything turned into a shade of black. The sudden night had surprised him. They lay still. She could picture his charming bewilderment, his eyes squinted and sweating dripping down the long, handsome nose.

"Can you hear that?" Shekhar whispered, breaking. Kadambari was now alert. A night creature buzzed somewhere around her. It settled on her sweaty skin and she felt the momentary pain of its sting. "Listen closely. It is your heartbeat."

Kadambari did not answer for it was very often that she knew how to respond to her husband. He heard things she didn't, felt things she didn't and spoke in words that hurt her mouth when she tried to speak them.

"Sir, it is dark."

"I will find a candle" he said, removing his well built frame from atop her. She exhaled a slow sigh of relief. His strength suffocated her. She wore her garment in a haphazard manner, taking care to cover her breasts and extend the end of the cloth over her head. She felt her way down the rusty iron staircase of his house. She knew that he would not be able to locate a matchbox or a candle. To her surprise, a small flame appeared from the storeroom on the ground floor. From the darkness emerged Shekhar, who walked past her and went upstairs. He took the light with him. She opened a window but the night was

stifling, windless and unpromising.

"Sir?"

"Why don't you call me Shekhar?"

"I am not used to that. I have always you called Sir."

"But you have ceased to be my student."

"I shall always remain your student. I have so many questions and I hope you would answer them."

"If I can."

"Why are they killing everyone?"

"The Muslim League proposes a split in the country. They want the Muslims to live in a new country where they are the clear majority and wish to call it Pakistan. Some people agree with it. Some don't. The others don't understand what they want to feel."

"Does everyone have to go? Even Fatima? She is a friend."

"I don't think we will see them anymore."

"Are we in trouble?"

"Yes we are. When I brought you here, I didn't know we were moving towards more turmoil than we had left behind. As we talk, the blood is drying on the streets. Homes are burning. Taxis are there only to help perpetrators of crimes. The shops are shut."

"All because they want a nation?"

"I don't know. I said I could answer if I can."

"But we don't have food."

"I know. I think I will leave very early tomorrow to see if Chand can give some food from his store. We stock supplies for a few days."

## TALES TALL AND SHORT

“Should we be scared?”

“We should be because we aren’t supposed to be here. And I don’t know where to go.”

Kadambari moved her face closer to the candle, inches away from the flame and began humming a song. The end of the sari covering her head slipped and fell on her shoulder. The flame danced in her eyes, the light falling on her youthful face. She was a child. She behaved like one. She thought of the confrontations, the blood and gore in the alleys around the house as stories about pirates and evil jinns of faraway lands. She would be scared but would never think of them as hurtful to her.

“I like it here” she said softly, as if afraid of expressing herself. She still wasn’t use to talking freely.

“Even now?”

“Yes. At lease I saw the world outside the window of my room. It doesn’t matter even if it was for just a few days. And tomorrow morning, the sky will be blue and I may have to see it through my window again but I am hopeful that I we would soon be able to spend the evenings on the terrace. I love watching the students wandering on the Science College lawns.”

Shekhar smiled at her. She was his most inquisitive student if not his brightest. Recovering from a terrible fever in the countryside, the zamindar lord of a dying estate employed him to teach his daughter the basics of Bengali and the alphabets of English. He had loved her from the time he saw her peeking from behind heavy curtains. The curtain had moved an inch

and a pair of brilliant eyes, now separated by the flame, had looked at him before scurrying away lest her father noticed her. When he started teaching her, Kadambari’s illiteracy astonished Shekhar; thirteen years of age and hardly able to spell her own name. The daughters of the Calcutta were progressing; especially women in the families of the radical Brahmos. He soon found that she was sharp but unutilised, a quick learner but distanced from learning. Within a few months, His love was overpowering his good judgement and he had decided that he would have to confess but leave immediately. And when those bright eyes looked up to him with equal affection, the surprise had been more of a shock. They had been very close to finishing the assigned syllabus when they eloped. He had brought her to the house had grown up in. But after his parents died and his uncle embroiled the house in legal hassle, he locked his ancestral house and travelled to the villages. Now, this was the only place he could bring his wife but he wasn’t sure when they would leave. He had wanted to go aboard those giant ships and sail far away. Kadambari was asleep now. He extracted a tattered volume from under the pillow and read it aloud to himself.

That though the radiance which was once so bright

*Be now forever taken from my sight.*

*Though nothing can bring back the hour of splendour in the grass, glory in the flower*

*We will grieve not; rather find strength in what remains behind.*

## To a Stranger

---

When Kadambari awoke the next morning, she guessed the time to be about seven o'clock. She checked her husband's watch. It was seven thirty. She folded her hands to her hand and offered her prayers to the sun. Sir had promised to teach her what the Sanskrit verse meant. A letter was tucked under the mat and stuck out. She grew nervous. The content did not scare her but she questioned her ability to read it fluently. She read the simple Bengali with great effort.

Will return with some food. Don't leave the house for anything.

Kadambari became teary. It was a lonely three storied house with multiple locked rooms and cobwebs had caught on your clothes, hands and hair. She went downstairs and to her pleasant surprise, a fruit left on a table. Next to it was laid a white flower from the tree at the end of their lane. She remembered running to collect it the first time they had walked down the narrow alley, suitcases in hand. Kadambari stood behind the closed door. She lifted a narrow rectangular flap and peeped out into the street. There was no one there. She inhaled deeply to see if she could smell the blood but she could not. Some cold water was left in the bucket and she washed her face. What followed was nothing but an endless wait.

Around midday, she heard angry voices outside the house. They were loud, heavily imbued with crass words. She pressed her ear against the door and picked up stray bits of conversation. She heard about a massacre at a Kesoram Cotton Mills and Odias being killed in Metiabruz. She didn't know where it was but that certainly scared her when one of them reported that only four of the workers could make it alive. She

knew that she wasn't supposed to step out but she was tempted to for it the light of the day was waning and Shekhar was somewhere she did not know. Time and again she peeped through the flap and when she heard a fight break out and covered her ears tightly until she heard it no more. Kadambari did not realise when she had fallen in deep slumber and when she awoke, it was pitch dark. As her eyes fluttered open, the sudden night that had fallen frightened her. For a while, she grappled around unable to find any of the essentials- candles, Shekhar's watch and Shekhar. By the time she had found two of them, it was very late. Kadambari could no longer contain herself. She went downstairs and unlocked the front door. The August night was sultry. There was a silence penetrating every corner of the lane; like the world was mourning the death of all those now lost to time and swords. A fire burned at the end of lane. A brilliant flame. Something horrible must have burning churning in the heat for a pungent odour was in the air. She sat on the steps, moonlight bathing her petite figure curled at the door. She sat there for a long time. Kadambari did not know how much time had passed before she heard footsteps. She stood up and but fear made her rooted to the spot. It was only one man and she had little reason to feel so frightened. He was walking rather slowly, dragging his right leg as if wounded. She walked towards him slowly and he too quickened his pace, although he drudging along. Kadambari was unaware of when the walk ended and the embrace had been initiated. Her face was coated in blood. She felt raw wounds on Shekhar's chest and face.

"I told you not to step out. Anything could have happened" he chided. His voice was raspy and

## ***TALES TALL AND SHORT***

he gasped for air after every few words. She cried silently.

“I had begun to think that you wouldn’t return.”

“I thought the same. But I remembered a chance bit of poetry as I crouched behind a gnarled tree and a bus was set on fire before my eyes.”

“Sir, only you can think of poetry before death.”

“It was the poem I was reading the morning I first saw you. The last lines said, I am to wait—I do not doubt I am to meet you again, I am to see to it that I do not lose you.”

“I do not understand a word.”

Shekhar laughed. It hurt to laugh. Kadambari smiled weakly. The single flower from the morning, now tucked in her hair, shone in moonlight. Four white petals around a yellow universe.

***Vidisha Ghosh***  
***B.A. (Hons) History, II yr.***



**Nimisha Randhar**  
**Ist Year, Economics Hons**

## The Monster Slayer

---

The dark of the night engulfed the town. It was a seemingly regular night, the sky dotted with stars, and the slight hum of crickets singing. But if one was to really see, they would know that there was something singular about that night. The air was laced with a sense of anticipation. For this was the night of the year the town witnessed an extraordinary phenomenon. The adults of the town were paid a visit by a rather unusual guest, the monster that lived under their beds when they were children! Tonight, they would literally come face-to-face with their fears.

Tara was reading by a lamp, more like trying to, as she couldn't concentrate. The thought of meeting the monster under her bed, who had terrified her during her childhood, seemed bizarre to her. Suddenly, she heard a sound, and turned to discover that a creature of a strange form had appeared into her room. She gave it one hard look, and burst out laughing, for her monster had a rather peculiar appearance. It looked like a cross between a giant bug and a zombie, not to mention its uncanny resemblance to Bozo, the clown at her friend's fourth birthday party, whose appearance, meant to amuse the children, had reduced most of them to hysterics! She shook her head and smiled in amusement at the sight of all the things she had feared as a little girl, and with a nostalgic smile, returned to her book.

In another part of town, Dylan encountered his monster in his study. It stood there, dirty and covered in rags, and a look of intense fear in its eyes - the fear of failure. And Dylan remembered those desolate nights when he feared that he

would never be able to escape from his terribly impoverished, squalid surroundings. Then the sound of the laughter of his children fell upon his ears, and he looked around to see the plush villa he now called home. He had worked hard, he had defeated his fears, he had made it. He smiled. Dylan was a happy man.

The same night saw Roy sprawled out on his worn-out couch in a drunken stupor. In his inebriated state, he heard a faint sound. Ah, his monster had arrived! He looked around, only to see his own self staring right back at him. The eyes that stared back at him were blank, listless and dead. With every piece of innocence that his drunkard, abusive father had snatched away, Roy had died a little inside. Soon enough came a time where there was no trace of anything human left inside him. Roy had become the monster that he had feared. Realisation hit him like lightning, and in that moment something inside him broke. His eyes were dead no more. They were filled with pain and anguish, tears running down in torrents. He wept for forgiveness, for all the pain he had inflicted, for all the grief he had given, for all the suffering he had caused. When finally there was quiet, Roy resolved that it was time to turn his life around. His tears became his salvation, for he realized that there still existed a dormant humanity within him. He stood up, for all was not lost. Monsters could be slain. So he would fight, and he would emerge a hero.

*Charu Sonal*

*B.A. (Hons) Political Science, III yr.*

## The Beginning of the End

(Historical fiction set in Delhi, August 1659).

---

I woke up at the crack of dawn, acutely aware of a discomfort, a nagging thought buzzing in my head, too hazy for me to clearly define, but persistent enough to force me to rise from bed. The morning dawned hot and humid, the monsoon clouds conspicuous by their absence. The heavy, moisture laden air bore down, suffocating and smothering, with not a single stray, rebellious wind to provide respite. The sun was just coming up, hitting the beautiful red stone of the fort and Masjid, caressing its domes and minarets, stretching golden across its courtyard, spreading down the central canal of Chandni Chowk, glinting off of its waters, and pushing its way into the havelis, illuminating every nook and crevice of Shahjahanabad. I watched from the roof of my house as the city lit up, and its inhabitants slowly rose from their slumber. But even the beautiful sunrise could not disperse the darkness that lingered, almost tangible, amongst the people. There was a strange lull in the air, an unusual quiet, an apprehension, a fear that was almost tangible, visible on the faces of the people who had slowly begun to fill the streets of the city, their hushed voices rising up and whispers filling the air.

For the last few years the city had been tense, watching developments at the court from the edge of its seat. Certainty had slowly given way to uncertainty, as the health of the Emperor flayed about and faltered; rumours flew all over the city, each equally plausible and yet unbelievable. Different stories were to be heard; some said that the Emperor's voracious sexual appetite was getting the better of him, forcing him to take incredible amounts of aphrodisiacs which brought him to the brink of death. The

emperor's sexual dalliances were frequently the subject of bazaar gossip, some of it far too ugly to be believed. Many said that he had had a special hall with mirrors on the walls and ceilings inside the fort so as to be able to watch himself in the act. The Emperor's daughter Jahanara's name was also dragged into the mud with wagging tongues talking about an increasingly sexual nature of the Emperor's relationship with his daughter. No man of good sense listened to these things of course, yet they seemed enticing to even the most hardened loyalist in such moments of darkness.

The last bout of the Emperor's illness had unravelled the last threads in the fabric of the city and the court. Rumours reigned that the Emperor was dead. Shopkeepers in Chandni Chowk boarded up their shops; people began to bury their possessions and valuables, anticipating the coming period of unrest and turmoil. Giving in to the general anxiety, I took our handful of family jewels and my wife's precious silks and hid them in the taikhana. All eyes had shifted to the Emperor's four sons and in hushed voices, people prognosticated.

The obvious choice, by the Emperor's own discretion had seemed to be Dara Shikoh, his first born and if news from the court was to be believed, his clear favourite and obvious choice for heir. Over the last few years, the Emperor had done everything but directly proclaim to all that Dara was his choice for Emperor. All nobles had to first pay obeisance to Dara before going to the Diwan-i-Khas to prostrate before the Emperor. Elephant fights were held wherever he wanted and his retainers were allowed to

hold gold and silver maces in the durbar hall; Dara was the only person allowed to sit in the Emperor's presence and had been given a small throne right next to that of the Emperor. The daily assertion of the Emperor's power and authority was through small details of protocols and privileges; Dara's exemption from most of them spoke volumes and was not missed by the notables of the city. Many were saying that for the first time, succession would be peaceful—the Emperor's favours and discretions could not possibly be ignored or negated by anyone and the glorious reign would have an even more glorious end, epic, by virtue of its peaceful nature. Others were more cynical. The older men, reclining on their diwans as they smoked their hookahs enlightened their younger and naïve relations about the violent and sinful nature of man; when such power and glory was to be had, who would chose to sit meekly and let it slip by? No Prince would ever give up his claim, *takht ya takhta*—throne or coffin—had always been the motto of the Mughals and it would never change. Just you watch, said Mirza Ghiyas, my octogenarian friend when he came over for dinner one day, brothers will soon be shedding blood.

Perhaps even before these rumours of the Emperor's death, his sons had begun planning their coronations. Everyone watched with bated breath to see who would make the first move. Shah Shuja had put these anxieties to rest by marching his vast army from Bengal, across the northern plains. The dark clouds hanging over the court seemed to pass with Shah Shuja's defeat and the Emperor's recovery. Letting out a sigh of relief, the city began to breathe easy. As the court moved to Agra to celebrate this victory, the inhabitants of Delhi organized grand feasts. Dinner parties were hosted by notables who had stayed behind, and as wine

and music flowed, guests fervently proclaimed their love for the Emperor and prayed for his long life.

The jubilations were rudely cut short when news arrived of Aurangzeb's and Murad Baksh's advances towards Delhi. I had seen Aurangzeb only once, several years ago, as the Prince had marched through the city to the fort, on a return campaign from the Deccan. Sitting regally on his white stallion, the prince had marched proudly, with what had seemed to me to be a rather stern and severe expression. Several things had been heard and said about Aurangzeb. His military feats were well-known and none could doubt his talent as a soldier, tactician and leader. Equally well-known was his opaque character, undecipherable and often perplexing. Perhaps this was also because the Emperor had always kept him away from court, posting him in the Deccan, occupying him with one gruelling battle after another. The city had never really got to know him. Now it seemed it would have a chance to do so.

Dara's army met Aurangzeb's in May 1657. Under the staggering heat of the summer sun the armies clashed. We had all stumbled through our daily work in a haze, awaiting news of the outcome. I expect that many hearts sank when it was heard that Dara had lost. The Prince had fled back to Agra, setting off directly towards Delhi, perhaps not wanting to face his father. More depressing news arrived of Aurangzeb's siege of the Agra fort. The fate of the Emperor was uncertain—some said he was dead, others that his own son had made him prisoner. Neither provided any kind of relief.

One startling news after another had followed. Soon it was heard that Murad Baksh too was dead. In the bazaars people said it was Aurangzeb who was responsible—force feeding his brother

poppy water until he died.

A few of us had still looked to Dara, as he fled from one place to another with Aurangzeb's army in hot pursuit. This had gone on for almost two years, till news arrived of Dara's capture.

It was now August, the monsoon clouds had arrived, with their stifling humidity, bogging down people and making any and all work extremely unpleasant.

News had arrived yesterday that Dara would be entering the city today; one could only assume what would happen to him. I looked down on the people filling the streets, as the sun climbed higher and higher in the sky, discussing the fate the Prince would meet. I climbed back down as my house woke up, and sitting down for breakfast, I found myself unable to eat. I felt sick. I had no personal attachment to Dara of course, but still, over the course of the last few years, I had found myself increasingly on his side. Perhaps that first impression of Aurangzeb had stuck—a stern severe man, difficult to like, almost a stranger. On the other side was Dara, a prince known to us all, the Emperor's favourite and the beloved of many in the city.

It had become uncomfortably hot by the time I was done pushing the food down my throat. Stepping out into the street, I joined the crowds now thronging the roads, trying to see above the mass of sweaty foreheads. Nobody knew what exactly they were waiting for, but none was able to leave. The air stank of anticipation; something was going to happen, though no one knew what. A few more hours slipped by, it was so very hot, tiny rivulets of sweat ran down each man's face, down his neck, all over his body, wetting clothes and sucking mouths dry. Finally there seemed to be some activity. The sound of drums could be heard from afar. Slowly a procession came into

view, but a procession very different from the ones the city was used to.

I could make out the rough shape of an elephant, about 3 miles away with a slight figure sitting on top. The crowd was now agitated, as people moved this way and that, craning their necks, shuffling about, trying to get a better view of what was happening. I elbowed my way ahead, butting people out of the way, pushing and shoving out of desperation. The sweating mass seemed to be closing down on me, but I pushed on resolutely, coming up every now and then for air. About half an hour later the Elephant began to pass by where I was standing, almost at the front of the crowd. I craned my neck up to see the figure arriving, and as soon as it was visible, I wished I had stayed behind, I wished I had stayed home. It was a sight I would never forget, it wouldn't require much effort; it would take a steel heart or a hopeless memory to do so.

The elephant itself was a rather filthy animal, covered with mud and dung, reeking from a distance; its ears were tattered and one of its tusks was chipped. As the miserable creature drew closer it became apparent that there were not one, but two figures sitting on top—a smaller figure in front, huddled into the larger figure at back, so that from a distance they seemed to be one. With a sinking heart I recognized them, Prince Dara and his young son, being marched through the city. The procession drew up memories of the young prince's wedding procession that had taken place in what seemed like a different lifetime, when the two figures sitting atop a majestic creature decked in gold and silver, travelling in a silken howdah had marched through the city. This procession was a far cry from those glittering royal processions. The prince and his son, bound in chains were being paraded through the city as the meanest

of prisoners, in the dirtiest, coarsest of cloth, torn from places, reeking of urine and rotting garbage. Prince Dara's head was adorned with a turban worn by the most poor and was slipping down as he leaned towards his son, wrapping his arms around him, trying to shield him from the gawking faces of the people. Some in the crowd seized this opportunity to throw rotting waste at the prince and his son as they passed by. Most stared in silence, unable to comprehend the sight before them. It was a miserable scene, unbearable, nauseating, and yet I couldn't tear my eyes away. It was beyond my understanding, how a Prince could be treated this way....this was a fate worse than death. The elephant had passed by me and was moving ahead towards the fort. I pulled away from the crowd, sick to my

gut and pushed my way back towards my house. I shut the door and locked it and walked in a daze back to my bed. I lay there, I don't know for how long, staring at the ceiling, afraid of closing my eyes for fear of seeing that grotesque elephant and the pitiful creatures atop it.

A few days later news arrived that Prince Dara had been beheaded, killed in front of his own son, as he fought to protect the both of them, by a group of men hoping to become Aurangzeb's favourites. The head had been presented to Aurangzeb, who now sat at ease on his hard, cold throne.

***Soumya Sahai***  
***B.A. (Hons) History, III yr.***

## A Silver Lining Melody

---

Words are what we live for. Answers are what we seek. And hope helps us breathe. From the moment I started penning down the incoherent verses that took up the empty spaces in my head and in my heart; I survived on these three things only: words, answers and hope. And today I set out on my last adventure in the quaint town of Ryefield seeking words, searching for answers and teaching my heart the beauty of hope.

I was in search of ‘Silver Linings’, a bookstore famous in secret circles of hopeful hearts and broken dreams, famous for making infinite wishes come true, famous for being the extraordinary element in the world of mundane existence, famous for being the one place where truth and dreams meet to create a kind of rare magic. The stories that flowed from this realm were melodies of souls that had tried and perished only to rise again, to believe, to conquer. I was that perished soul.

I remember that place crystal clear, a wooden establishment with the words ‘Silver Lining’ in dry paint on top, the dots above the i’s living a faint existence and the silver stars messily swirling about around the words. It was late in the night and the sign at the door said ‘Closed’, but there were lights on inside and I rapped at the door a little too loud, in quiet desperation and hesitation, my heart beating against my chest loudly. As I waited there, my gaze shifted from the shop to the clear night sky and the vast stretches of green all around me, reminding me that I was in the middle of nowhere and at the same time, I was somewhere. The creaking of the door caught my attention and my eyes fell on the girl who pulled the door slightly ajar with

a questioning look in her eyes. It took me five minutes to explain why I was there and why I was desperate to know the story behind this place and why I needed to make a wish tonight and it took her only a second to let me in.

I remember the smell of old books, the dream catcher that hung next to the cash register, the cup of coffee on the table next to a book opened to a page with the words ‘Leaves of Grass.’ I remember the mahogany shelves and the fairy lights that decorated each of them and the way I felt like I belonged somewhere. But because it seems I have limited words to spare for this story, I’ll tell you what she told me.

I was asked to write down my wish on any book I choose and leave that book behind, from the place where I picked it up or somewhere else but I was to leave it behind for my wish to come true. When I asked how long it would take for that wish to come true, she said one word. Soon. But that didn’t satisfy me. That could never satisfy anyone, I argued but she said it satisfied those who wanted to believe.

“What is the real story?” That was what I had wanted to ask and I finally summed up the courage to blurt out those words and all she did was give me a curious smile and said this.

“The world where we live in is not the world we grew up believing in. Wishes don’t come true and dreams end in failures. But I have always known this. The world is a place of infinite possibilities and probabilities, a place where anything can happen. This is that place. And do you know why? It’s because here people aren’t

afraid to question, it is here that people fearlessly believe. We don't tell them that there's no magic here because that would be a lie. There is so much of magic here but it's not something that was already there, it was created by people. By you and me. The reason that wishes come true here of all places is because when people step out of here, they truly believe and that is all we need in the end. I hope you do too because only then your wish will come true."

I was captivated. I was intrigued. But I wasn't convinced. In the few minutes that followed, I took down an edition of *The Waves* from the topmost shelf nearby and wrote down the one thing I needed, I wanted to hope for. The last words I told her were this. "I want to believe."

And she said, "Me too."

In three years' time, I found a package in my mail and in that parcel was that book with my wish scribbled inside. And there was note in clear, cursive writing that said "What's your real story?"

It took three years' time but my wish came true and all I did was believe. Nothing more and nothing less because it was there in *Silver Lining* that I realized what my heart had hoped for, what words I wanted to pen down and it was today that I got an answer. And it was today that I learned the beauty, the extraordinary magic of simply believing in life as we know it.

*Asmaani Kumar*  
*B.A. (Hons) Sociology, 1 yr.*

## **A Scandalous Affair**

---

“I want both your boy and the girl” announced a young man in his thirties, victory flashing in his dark blue eyes. Ruffling his short golden hair, he suppressed his laughter as his rival’s face lost its pallor.

“Dare you utter a word against my nephew and niece?” shouted a man as he unsheathed his sword.

“Hold on Matthius” shouted another man.

“How do you know?” he stuttered as his brown orbs reflected panic.

“5 years is a long time, Paurus, and yet you know nothing of politics” the enemy laughed as the sun emblem on his cloak shone in all its glory. In response, the other could only clench his ivory teeth as his shoulder length raven hair swayed with the breeze.

“We will fight, Pernicus”

“I am sure, you will but have you thought about your men who are exhausted from the war against Kingdom of Eddington?”

Pernicus keeping a hand on Paurus’s shoulder whispered “I will wait” and then left.

She heard it all, her fingers clenching the long silk gown and silent tears escaping those blue eyes. There he stood, with his head bowed down in helplessness. As his head snapped in her direction, he could not help but shout as she fainted.

“Gabrielle”

6 months later:

Paurus paced impatiently outside the operation

theatre as his cloak swayed in every direction. The red light went off and as soon as the doctor stepped out, Paurus, in his anxiety, bearded the doctor.

“How are they?”

“Your highness, queen has ...” the doctor choked. He was pushed aside as Paurus rushed in. He wiped the sweat off his forehead and gulped on his saliva as he remembered an incident from a few minutes ago.

“Here’s your cash and now you must forget about the princess” a masked man ordered handing over the money to him and took her.

“But I still could not understand his weird fashion sense of wearing a square cut ruby ring on thumb” the doctor huffed.

He found her sleeping peacefully on the bed under the effect of sedatives and heaved a sigh of relief. He slowly and steadily approached the cot and found his eyes moist on seeing two angels, his prince and princess.

Oddly enough the baby boy was literally howling and the girl was showing no movement. He touched her and before he could register the truth, the doctor broke his dreams with his announcement.

“She is dead”.

He could no longer stand. His legs were mere jelly as Matthius came to his aid.

“Sorry to interrupt your mourning but I can’t trust you with the prince. What if you had swapped places with another child?” Pernicus questioned raising his brows.

“What if we had?” Matthius replied with bloodshot eyes.

“You wish, Matthius. That is why you are here in my hospital. Whatever happens here comes in my notice before even happening”.

Regaining his composure Paurus whispered something in Matthius’s ears, to which he nodded and left. Turning to king of Kingdom Magicai, Paurus picked up his heir and handed him over.

“You know, I can definitely spare your queen one chance to shower her love and affection on her new born” Pernicus raised his brow mockingly.

Paurus smiled faintly as he continued, “Gabrielle has the heart of a mother and she won’t be able to give him up.”

Pernicus nodded as he started leaving with him. Suddenly he stopped in his track and muttered “Believe me Paurus, by cooperating with me you have ensured a bright future for people of Hampshire and indeed avoided the inevitable.”

“You too remember Pernicus that if anything happens to my boy, Magicai will suffer serious repercussions” Paurus roared. Soon Matthius returned with a baby in his arms as he could not help but stare at her innocence.

“Brother, just look at her. She is so beautiful” Matthius gleamed.

“Keep her in the cot” he replied monotonously.

One hour later, Gabrielle cried loudly holding his arms as he cried silently.

Magicai

Pernicus gulped his whisky. “I can’t understand why you wear a ring on your thumb,” he asked.

The other man ruffled his raven hair and replied, “That is way I like it.”

“My friend, it is because of you that Hampshire finally is under me” Pernicus said, keeping a hand on his shoulder.

“Cheers to that, but you do remember the deal?”

“I do” Pernicus replied and left for his chamber.

Pernicus stood beside the bed post as he saw her play with the baby.

“You look happy, my Love” he stated to the lady in long black hair.

“I am busy. Stop pestering me and help me change his diapers” she scolded him.

Pernicus raised his brows as she burst into laughter leaving him in deep thought.

6 months later:

“You butcher, step out and fight like a warrior” Paurus roared as his army of 50,000 waited at the doorsteps of palace.

“I never thought that you will behave so immaturely, breaking your promise” Pernicus retorted.

“What negotiations? It is you who broke it” Paurus shouted wiping a tear off his cheek and continued “Here you are celebrating the birth of.....”

Pernicus cut him in between and asked “Don’t you love your brother?”

Paurus looked on as he saw Matthius stepped out, bound in shackles.

“So you intend to fight over the prince who exists no more or work out a peace treaty for your dear brother’s life?”

Pernicus smirked as Paurus let the sword fall off his hand.

## *TALES TALL AND SHORT*

20 years later:

A man in his early twenties dressed in black robes stepped out of black car as the whole university appeared to be crowded by final year students. A girl with short black hair ruffled his brown locks as he scrunched his nose and shouted “Stop it, Miranda”.

“Descendant of the throne, where’s your lady” Miranda joked.

He blushed at the reminder and suddenly his baby brown eyes sparkled at her sight. Her waist length brown curls complimented her chocolate brown eyes. They hugged each other and afterward stood hand in hand.

Hampshire: “Celia, remove the orchids for the tulips are her favourite and Morris, did you bring the puppy?” ordered around Gabrielle as whole palace prepared for celebrations.

“8 long years; my princess would have grown into a fine young lady” she wondered.

“20 long years you have lived this lie and I have died every second” Paurus murmured.

Magical

“What are you doing here? You should go to the airport. My baby is returning after 7 long years. He would be very angry if you kept him waiting” Victoria shouted.

“Calm yourself Love. It looks like ageing has seriously affected your memory. Aaron returns tomorrow” Pernicus argued. Her lips twitched as he laughed.

Next day:

“Come here young man” Pernicus said embracing his beloved son.

“You have grown old, dad” Aaron joked.

“And you have grown into a gentleman”

“If you father-son duo are done, then let me hug my child” Victoria complained.

“I am not a baby, Mom” Aaron complained as he hugged her.

On the other side, in Hampshire the whole kingdom celebrated her return.

“My girl, I missed you so much” Gabrielle said squeezing her hands.

“Me too, mother” she replied wiping her mother’s tears.

“Jasmine” Paurus called as she touched his feet and smiled at his sight.

Magical

“Are you even in your senses, Aaron” Pernicus roared pacing around the chamber in tension.

“I am, Dad. I love her” Aaron announced.

“They are enemies”

“No dad, it is King Paurus you hate. We have nothing to do with your internal scuffles.”

“She is not even a princess. Just some garbage he arranged for her queen’s happiness”

“What are you saying?” Aaron demanded shocked.

“I was myself there when delivery occurred. The girl died and they bought this girl from somewhere” Pernicus replied.

“What were you doing there?” he questioned.

The question alarmed Pernicus.

“There were complications and so Paurus requested for our doctors”. Wiping the sweat, he continued “I did not wish to drag his unborn in our fight”.

“So why are you dragging us now? Royal or not, I love Jasmine and will bear the responsibilities of throne only when she becomes my queen.”

Hampshire:

“No Jasmine, No” shouted Paurus as he

supported Gabrielle who was crying profusely.

“Why not father? We love each other and the fight is between you and his father. Why is mother crying?”

“Because Pernicus killed your brother” Paurus replied.

“Brother?” Jasmine stuttered as she felt her world crumble.

“Someone betrayed us and handed him our military information using which he blackmailed us to hand him our son for the sake of my people’s safety”

A Few weeks later:

“Is she all right?”

“Princess is 2 month pregnant” replied the doctor and left.

Magical:

“What are you doing here?” Pernicus growled.

“I am here for my daughter, your son has made my daughter pregnant” Paurus shouted.

“What rubbish!”

“Is this true, Jasmine?” Aaron asked, elated.

“I am so happy. I am going to become a father” Aaron announced hugging Jasmine as both families looked on.

Two months later:

“Hurry up Dave, we will get late” Aaron called.

“You get ready; I am going for a quick round in dungeon cells to make sure that security arrangements are up to the mark.”

As Aaron passed the prisoners in cell, his eyes fell on a square cut ruby ring which he picked

up and left.

“Dad, is this yours?” Aaron asked showing him the ruby ring.

Pernicus quickly grabbed the ring and mumbled, “It must have slipped off”.

Hampshire:

“I can’t believe I am going to be associated with that murderer just because of you” Paurus accused Jasmine who cried silently.

The wedding was kept a close affair. All the guests, bride and groom’s family assembled in the main hall. None of the families displayed any sign of enthusiasm. Jasmine couldn’t stop staring at her soon to be father-in-law. Suddenly, she lost her cool and turned Pernicus by holding his shoulders. The whole crowd went still.

“How can you be so cruel?” she asked agitatedly.

“Behave yourself. What nonsense is this?” Pernicus said as he looked around warily to notice all eyes on him.

“Why did you kill my brother?”

“What are you talking about?” Pernicus stuttered.

“Don’t act innocent. Just to satisfy your greed for power you killed a new born” she accused.

“What rubbish” Aaron exclaimed

“It’s the truth” Paurus shouted narrating the whole history to Aaron.

“No, my father is my hero. Dad tell them that you didn’t kill anyone. Tell them” Aaron requested in helplessness.

## *TALES TALL AND SHORT*

Pernicus looked at Victoria who nodded her head in negative and then he looked intently at his son and taking a deep breath answered “I didn’t kill anyone”.

Aaron’s face lit up. Gabrielle stood up from her chair and approached Pernicus. He could not meet her eyes.

“He is alive” Pernicus replied. “Aaron is your son”.

All eyes turned to Aaron who only stared at the people he thought were his parents.

“We were childless and when I saw Victoria smile for the first time in our marriage of 8 years, I decided to spread the rumors of your son’s death and her pregnancy. She was never pregnant.”

Gabrielle slowly approached Aaron and held his shoulders.

The hall started whispering. “They are siblings.”

“They are not” Pernicus shouted as an eerie silence fell over and then turning to Paurus continued “Your daughter was born dead”.

Gabrielle and Jasmine turned to him as he said “I am not lying, Matthius arranged Jasmine from somewhere as Paurus did not wish to see you broken”.

Paurus could not meet their eyes but still he approached Aaron and whispered, “My son”

Suddenly the hall doors flew open and a voice echoed around the hall “Not yours, brother. My son”

All heads turned to see the owner of the voice. A man in tattered and ragged clothes with shackles stepped inside. Pernicus couldn’t understand how Matthius could escape his secret cell but

Paurus and Gabrielle were in a fix.

“Yes, I am Aaron’s father and not you. How can you be? You are impotent” Matthius smirked.

Paurus looked at Gabrielle with blood shot eyes as she came to her defense “He is lying!”

“It’s not your fault. It was always me in those months before your pregnancy. I was bewitched by you and every night I would spike Brother’s drink. As soon as he would fall asleep, I would wear his mask....a mask that I specially got prepared from London and come to your chamber.”

Everyone was shocked and Aaron felt like his very existence was being played with. Matthius approached Jasmine and wiping her tears said “You are not something that I arranged for her happiness. You are our very own daughter”.

“But she was dead” Pernicus asked.

“My ring doesn’t suit you” Matthius announced snatching the ring from Pernicus and wore it on his thumb.

“I cannot understand” Paurus said.

“It is simple. Once I knew that Gabrielle was pregnant with my child, I joined hands with Paurus. He wanted control over Hampshire and I just wanted the children. But I only had one motive, to disappear with my children and then appear one day with the grown up heirs to claim the throne and the control over entire kingdom. But I had my doubts on Paurus so I bribed the doctor as I was already in the operation theater; I just hid Jasmine and replaced her with a body from morgue. When Paurus asked me to arrange for a girl, I bought Jasmine only. You played foul Pernicus and locked me up to keep Aaron to yourself” Matthius snickered.

“Just tell me one last thing. How do you know that I was im...” broke down Paurus.

“Your first wife, Brizel had you tested and because you could not satisfy her lust, I did”.

Aaron and Jasmine are siblings for sure! Aaron saw Gabrielle fall as he rushed to her but he was late. She could not bear the trauma of having an illicit relationship with another man. Aaron fumed as he approached Matthius and then pulling his dagger out stabbed him in his stomach.

“You are not my father. You are the most disgusting person to have existed ever”. Matthius died on the spot.

Suddenly, Paurus fainted.

“We are going far away to start afresh because what has been done is done” Aaron announced. Jasmine and him left everything behind, escaping the harsh realities of their existence and to ensure a better future for their unborn.

***Nivedita Rathor***  
***B.Sc. Life Sciences, I yr***

## Vineeta

---

‘Oh! She’s a star and she makes me fly.’

Anand was taking Vineeta to meet his parents. But, yet again, the couple was not given the welcome they hoped for. The door was shut in their faces again. It was a hot summer day, smack in the middle of June. The cicadas were chirping loud. The bang of the door was still ringing in their ears. Vineeta softly touched Anand’s arm and gave him a peck on the cheek. He looked at her with all the love he could muster. They turned and walked out the gate.

As they approached their house, Maya and Nikhil rushed to the door. Maybe Dada and Dadi have also come with Ma and Papa? Seeing no extra pair of people, Maya hugged her mother’s legs while Nikhil bounded out of the house. It had been a year since this strange routine.

Anand and Vineeta had met each other in college. They were debating against each other. Vineeta fell hook, line and sinker for the guy with the baritone voice. She countered him often just to hear him speak and, after the competition, befriended him. As she had already lost her parents, Anand became everything to her. When he proposed to her, Vineeta hoped to gain parents again, but that door was shut in their faces. His

parents refused to accept her. They had a small wedding ceremony attended by close friends. Anand’s hope that his parents would relent at least after the marriage was shattered. A year later, Maya and Nikhil came into their life and the small family was content and happy.

But Vineeta and Anand did not stop their monthly trip to Anand’s house. Maya and Nikhil kept hoping to meet their grand-parents.

One day, on their way back, Vineeta’s veil fell off. Her scars shone bright and clear and she started crying. Anand quickly bent down and picked up her veil. He kissed her scars and put the veil back on. He kissed her again and they continued their journey back. Vineeta was the victim of an acid-attack. Anand had been with her then and continued to stand by her as she underwent plastic surgery, and as she brought the culprits to court, fighting the long battle of law. He stood even stronger by her when she saw her marred face and cried long and hard tears for what was lost to her. Perhaps, one day, Anand’s parents too would see the beauty behind the scars.

*Shreeshri Pandey*  
*B.A. Programme II yr*

## Come Red

---

Along that dangerously curvaceous mountain road on this dark wet night, their car sped at 120 km/hr. They could hear the curfew sirens go off in the distance and Mona ji was starting to worry. Her boss, who had come to the village town to conduct a workshop, had taken more time than she had anticipated. She should've made arrangements for a hotel in town and left for the village in the morning. Too late for that now, she thought. But her trustworthy driver had given his word that he'd be able to get them back on time. He seemed awfully confident; maybe that should've been the giveaway.

Mona closed her eyes and listened intently; the light spattering of rain, the car engine, the sounds of the night and no blasts yet. She sighed out a little relief.

8:10 pm.

"How much more time till we reach, guru ji?"

Mona asked the middle-aged driver. He had been driving for the organization for more than 8 years and though she had known him for no more than a month, it felt like a lifetime.

"Around 20 more minutes, madam. Don't worry, it's raining today. These bastards won't start till the drizzle dies down."

He reminded her of her old school teacher. His tendency to over familiarise often made new comers slightly annoyed but it comforted Mona in this new place.

8:12 pm.

Would Nanu already be asleep? Mona wondered. "I'll call her just to check". She fumbled to get her Nokia from her bag; her palms were

sweating and shaking a little. She ignored it. Ah yes, some network connectivity is back, she thought.

On her contacts list, she punched the number '4' to go to contacts starting with 'g'. She pressed call on the first contact: 'ghar'.

One ring. Two. Three. Fou- "Hello?"

"Nanu! What are you doing?"

"Hajur! Nothing. I am just watching TV"

"Did you finish your homework? And is Baba back?"

"I don't have homework today and Baba came home half an hour ago."

"Okay".

"When are you coming home? Can you bring me some khuwa when you get back? Please pleaseplease."

"I'll be back in 2 weeks and I'll bring it then."

"2 weeks?! But you've been gone for more than a month!"

"I know, Nanu but I have some important work and I'll be back as soon as I am done. Give the phone to Baba now."

"He's taking a shower."

"Okay. I'll talk to him tomorrow then. And you, don't watch TV so much!"

"La la. I won't. It was .....only.. today because I don't have....homework."

"Hmm...okay I am losing network again. I'll call you tomorrow. Bye Nanu!"

"Bye Aama."

8:16 pm.

14 more minutes. They don't start till at least 9:30 pm so it'll be fine. Mona thought to calm herself.

## *TALES TALL AND SHORT*

"How old is your daughter, madam?" Guru ji asked.

"She's eleven."

"Eleven years old?! You have an eleven-year old daughter? And here I was thinking she's five or six this whole time. Haha!"

Mona ji smiled back.

The rain gathered speed and in the next minute, it was pouring down. This was good and bad news. Bad news: it would take more time to drive through the muddy path. Good news: the bombings were more likely to start once the rain stopped. Mona pressed her forehead on the side against the window glass and looked outside. She could just barely make out the end of the path; they seemed to be treading terribly close to the edge. She thought better to just look forward.

As the battering died down to a drizzle again in the next five minutes, Mona's heartbeat slowly sped up. Nine more minutes. They could see some light from the village in front. This relieved her a little. I am never taking a risk like this again, she thought, no matter how trustworthy the person is.

Thump!

The car stopped and jerked forward. Mona looked at the driver, who seemed confused yet determined, changing the gear and pressing acceleration. There was a loud noise from the engine and of the tire scrunching, but they weren't moving at all. The car was stuck.

The driver pressed the accelerator again; they moved an inch but then again back to the same position.

Mona wasn't religious but 'Please God Please God Please God' was the only thing running

in her mind over and over. Guru ji didn't seem to pay any attention to her clenched hands and face; his brute determination to get the car to move had taken over him like a trance.

The rain was still drizzling outside otherwise the night was still silent.

"We'll have to push the car out from the mud." Guru ji said with a solemn expression. "Do you know how to drive madam?"

"Yes."

"I will push while you steer."

When they got out to do their respectful duties it seemed as though both had silently agreed to focus on the task at hand and not think about the inevitable.

Somewhere deep down Mona knew that it was futile to even try to get the heavy car moving with only two people at hand but maybe, just maybe, something would work out. It was worth a shot anyway.

"Ready madam? Now!" Guru ji shouted from behind as he pushed the machine with as much force as he could while Mona pressed the accelerator. The engine screeched again and the tires rolled, mud splattered everywhere but the car didn't move. They tried it again. And again and one more time. Guru ji, soaked in a concoction of rain, sweat and mud, came to the front of the car and slumped on the driver's door.

8.51 pm.

They hadn't even noticed the time.

"How much time if we walk?" asked Mona.

"45 minutes. Half an hour if we're going really fast. But it's not safe, not now." Guru ji replied.

"It's not safe here if we stay any longer!" Mona ji retorted.

"Madam, at least here we have some cover. Out there, in the forest, in the dark, you won't even see where the bullet is coming from until it hits you! These bastards don't care if we're civilians; all they want is Red."

"So you're saying our best option is to wait out the curfew in the open in the middle of a civil war?" Mona was growing frantic.

"Yes."

And so they waited. Guru ji wiped off the mud and sat on his seat while Mona moved to the back. The hum of the engine no longer in the background, the both of them sat in complete silence and complete darkness.

9.15pm.

"You were right Madam; we should've stayed in town tonight. It was stupid of me to have taken a risk. I will keep watch if you want to rest your eyes for a while." Guru ji said finally breaking the silence.

"No I'm fine. I couldn't possibly fall asleep now", she said. But the body often contradicts the mind and a short while later Mona nodded off, resting her head on the window.

...She is at her daughter's school and sees her playing on the swing by herself. Mona scolds her for not coming home but her daughter doesn't recognise her. She starts saying "I'm your mother! Mother! Mother!"...

"Madam! Madam! Wake up!" Guru ji was shouting in a frantically whisper.

Mona came back to reality a bit disoriented as the memory of recent events flooded back to her.

"Yes I am awake. What is goin-" the latter half of her question got engulfed by a distinct blast somewhere in the near distance. The car rocked

a little as the sound reverberated through the hills.

"Get down, lie down on the seat!" Guru ji said in a trembling voice.

There was another blast the moment her head touched the seat. Her hands were shaking involuntarily and for some reason all she could think about was the distinct car smell of stale sweat on fabric.

They stayed like that for six blasts spread over an hour. Each one was louder, which meant it was getting closer.

But after the hour it suddenly stopped. Mona rolled down the window just an inch to let the cold breeze in and raised her head slightly just enough to peer out. The night was dark and the rain had stopped. She wanted to ask Guru ji if he thought the blasts had stopped for good but remembered what her daughter had said to her a few days back: "Don't jinx it, Aama! It'll happen if you say that it won't happen. That's how it works."

"How what works?" Mona had asked to humour her.

"The entire world!" She had exclaimed as if in disbelief that her own mother didn't know this already.

And so, Mona kept quiet and waited some more.

The silent night stretched like a rubber band which just wouldn't snap. Sleep didn't come back to Mona and though they're weren't talking, she could tell that Guru ji was also wide awake.

Just when the silence was starting to get slightly comforting, it broke.

"Comrade Sir! I think there's a car over here!" Mona and the driver sank deeper into their seats.

## ***TALES TALL AND SHORT***

They didn't dare utter a single word.

"Take out your torch, Comrade. Light it only for a second." Another, more forceful voice responded.

"Are you sure sir?"

"Do as I say!"

The light from the torch flashed on the path in front of the car for a second and skimmed over the car thrice.

"Turn it off, you idiot!" The second voice demanded.

Darkness covered them again.

"I couldn't see anyone inside. But do you think it's their car sir? The intel did say they're moving their base closer to here."

"Do you not know how to read you idiot? The sticker on the car is of some INGO. These cars are worth more than 40 lakhs!"

"Baafre! Sir, are you sure we should move now? The others will be here in a few hours—what if it's a trap sir?" The voice sounded frazzled.

There was a moment of silence.

"It's not a trap." The second voice said, now much closer.

Mona was listening to the conversation so intently that she jumped a little when the voice sounded so close.

"Curse on the rains! I'll have to wash the mud off my boots again!" The first voice exclaimed loudly.

"Give me the torch!" The more forceful voice ordered.

They were right outside.

The yellow light washed over Mona's inert form.

"Someone's in there! Get out now!" The forceful voice shouted.

Whatever happened after that was a complete

haze. There were more voices and more shouting. Gunshots were fired and all the while Mona closed her eyes and lay absolutely still inhaling the stale sweaty car seat smell. She couldn't tell how long she stayed like that.

"Madam?" She felt a hand slightly shake her shoulder.

Mona refused to move and closed her eyes even tighter.

"We have to go Madam. Please get up now." Guru ji said again in hurried voice.

Mona's heart skipped a beat. She thought they were being taken hostage.

"Madam, we have to leave now before the rest of the bastards get here and raise hell!"

Mona finally opened her eyes and got up. Disoriented and confused she looked at her driver questioningly.

"Let's go!"

She grabbed her bag as she got out of the car onto the muddy path lit by torchlight.

Two men dressed in camouflage attire lay dead in front of her. Her eyes caught the bright red of the blood-soaked bands around their arms. She cringed at the dark irony, looking the other way towards the light, where Guru ji was headed, where she saw more men in the same camouflage attire.

Guru ji turned to check when he noticed her confused and alarmed expression.

"Look at their arms Madam. They're not marked by Red." He said as if he'd read her mind.

But weren't they? Mona ji thought as she made her way towards them.

***Yutsha Dahal***  
***B.A. (Programme), III yr.***

## My Friend

---

"Hey! come and play with me"

"What, who are you?"

"I'm Rachelle, new here"

"Me, Zara. What do you want to play?"

Early this morning, I met this girl Rachelle, a cute little American, probably, in violet silk, near our backyard fence. I had stretched myself out in my shorts and a yellow tee to sunbathe. She asked me to come and play with her. I had readily agreed for I was bored. We decided to play tennis in the tennis court nearby. I went in to fetch the rackets and we both walked past my fence. The yellow leaves had fallen, much to my surprise, and the path seemed creepy. Maybe I felt so because we were the only passersby. We played tennis for three hours before deciding to go back home. Rachelle grew a bit mischievous: she insisted we take the longer route. I agreed after some hesitation. On the way, we spotted a church. I went in but she refused to though I asked her. It was perplexing, for I had seen a cross round her neck.

We parted just outside our fence. At around 6 pm my uncle decided to go to the cemetery to visit my grave of my aunt who had died 15 years ago. I accompanied him. There, I saw a woman who resembled Rachelle greatly. What grabbed my attention to her was her constant weeping holding a red album. I went nearer, and saw that the tombstone read 'Miss Zara, Rachelle—Friends Forever'. Scared, I asked the lady who she was. She told me that Rachelle was her sister's only daughter, and had committed suicide. She showed me her picture. Jesus, she was Rachelle, the one with whom I had played tennis that morning. I asked her when this tragedy happened. She told me that she had died two years ago in her favourite violet silk.

And I remembered Rachelle's final words before we parted. "You are really sweet. I will definitely come back and take you to my place. I promise"

*Ekta Binjola*  
*B.Sc. Physical Sc Computers, 1 yr*

## North Campus is a Funny Place

---

As a fuccha you enter  
you see  
you admire  
and just when you're in awe of the whole atmosphere  
you wonder what people do here  
You see the e-ricks and their 10 rupee policy  
and without your parents you go buy stationary  
and you see couples holding hands  
and student political wings passing remarks  
and fighting over who removed whose poster  
and how the fuck did they let the chick run for elections  
and you see men see women with a different gaze  
what she's wearing has little to do with this  
be it a salwar or a skirt, they don't care  
if she has a cigarette in her hand, it's a different matter altogether  
they might mentally abuse their girlfriends back home but here they have judgment  
and trust me, you'll find misogyny here in abundance  
and you turn around and see a little boy with stickers  
being ignored by the people and he looks hungry  
so you buy him biscuits and snickers  
and you see the shopkeeper smile  
and later you find out that the boy gets this five times a day  
and he's mastered his sad face and teary eyes  
and you go back to your pg/ hostel and miss your mother  
and you wake up next to a stranger who doesn't even bother  
and then you go to college  
and worry about ragging  
little do you know then that you'll soon be partying,  
with the same seniors you were so afraid of  
with sprite and some Smirnoff  
and then you give it four weeks to sink it all in  
and then you give it four more to complete your assignments

and then you give it another four until the semester ends  
and four by four it's the end of your senior year  
and you haven't even realized but you've become  
the boy with the poster  
or the girl with the cigarette  
or the couple at the juice corner  
until you see a fuccha enter  
and you laugh a little bit inside  
because North Campus is a funny place  
you see  
you admire  
and somehow you survive.

*Ambica Naithani*  
*B.A. (Hons) History, 1 yr*

## 1947

---

There lay a million dead,  
Thousands of children under-fed.  
The fight seemed to be never-ending  
Along with people, emotions were parting.  
Who knew what was the incentive,  
Where was the lost motive?  
Were we to unite or to fall apart?  
With a barrier in every heart,  
None knew where they belong,  
Gunshots where there was birdsong.  
Everyone ran and sought refuge,  
No last goodbyes before the deluge.  
And as we flirted with the grim reaper,  
As our scars grew darker and deeper  
We searched inside us for the human,  
But he was already gone for no reason.  
We ran, we killed, we fought, we raped  
Two new countries, a new future we shaped.  
But unknown and immeasurable is the cost,  
Of all that was lost.  
And as we were flirting with death,  
Humanity took its last breath.

*Shireen Manocha*  
*B.A. (Hons) Political Science, 1 yr.*

## Sonnet

---

Shining like a full moon sat the young bride,  
In a sari as red as a fresh rose;  
Her father happy and gay, stood in pride  
The wedding lights concealing the shadows

The vermilion shone bright on her forehead,  
Silently announcing her fidelity,  
That binds her firmly to her marriage bed,  
Even in times of utter cruelty.

Dreams gleam in her eyes like distant stars,  
Numerous, but far high beyond her reach;  
Marriage is but a cage with steel bars,  
That makes her rose garland begin to bleach.

The scarlet bangles are markers of woe,  
The pomp and gaiety is but a great show

*Karabi Barman*  
*B.A. (Hons) English, II yr*

## **The Mountain Beckons**

---

Foggy clouds engulf the peak  
As if crowning an emperor brave,  
Who protects the masses strong and weak  
From the cold shattering winds grave...

Green meadows are a sight to behold  
With goats and sheep in its hold.  
Here and there lies scattered a cosy hut  
The village lies in the valley deeply cut.

A brook flows south by the woods  
Ponies slake their thirst here;  
Just as someone plucks the fruits  
In the orchard so bright and near.

Ah! I wish I was there forever  
Amidst the golden peaks there,  
Warm by the fireside when it snows outside,  
And out in the meadows, on a horse ride,  
When sunshine bathes the mountainside.

*Karabi Barman*  
*B.A. (Hons) English, II yr.*

## Cool Water

---

### 1. Calmness

His brain matter metamorphoses into musings  
Of gunshots and red velvet cakes.  
A constant buzz in his ear, the switching on and off of his lids  
Paranoia has a favourite song  
As the cool tap water  
Embraces his skin,  
The pins and needles submerge in a well of calm.

### 2. Death

The wrong step, from the edge of the boat  
A flailing dive into the depths of the sea.  
Archimedes' principle defied  
The cool water lures in the being,  
Death's silent seduction.

### 3. Summer.

Sweltering heat  
Unapologetic, unforgiving;  
Trickling little drops down the spine  
Meandering through bra hooks.  
As I bend forward,  
Gravity conducts their dance.  
When I bend backwards,  
Arching my back  
Stretching my neck  
The cool water sprints past my throat,  
The little dribbling drops vanish.

*Ankita Dhar Karmakar*  
*B.A. (Hons) English, 1 yr.*

## Dance of the Seven Seas

---

This is the earth and these, its seven seas  
High and low, high and low.  
Bright Red, Scarlet, Pink, Crimson,  
Fuchsia, Burgundy and Vermilion.

The earth spins and the seas with it  
Or does it drown in the whirlpool they create?  
Bright Red is hot, rising as tall flames  
Blazing and consuming what falls in.  
Ferocious waves cut all sound,  
Now face is still, quakes hit ground.

The earth spins and the seas with it  
Or does it drown in the whirlpool they create?  
Rain patters like muffled drums  
On Scarlet after storm has abated.  
Valorous waves that had fought gales  
Redeem marine life, end of their travails.

The earth spins and the seas with it  
Or does it drown in the whirlpool they create?  
A cool soft breeze blows  
Giving off a fresh rosy scent,  
Over the Pink sea that sedates  
Through pleasant music rush creates.

The earth spins and the seas with it  
Or does it drown in the whirlpool they create?  
Dolphins once again take a dip  
In the lively current of Crimson  
Passing the news to sea bed, forlorn  
That darkness ends and sun is born.

The earth spins and the seas with it  
Or does it drown in the whirlpool they create?  
The flow is smooth, the flow is sudden  
With ripples and ruffles in Fuchsia waters.  
Are they bubbles or are they pearls?  
Answer's in the depth of swirls.

The earth spins and the seas with it  
Or does it drown in the whirlpool they create?  
Burgundy has a velvety top and  
Bottomless depths of brilliant colour  
Her smiles rule these seas- pinot noir,  
Tranquil, shimmering: Tyche's boudoir.

The earth spins and the seas with it  
Or does it drown in the whirlpool they create?  
Sun brightens the majestic Vermillion,  
Also afire with blow ups from depths.  
Light is the alpha and omega of water  
So time is offered at infinity's altar.  
Isn't this, darling, how you and I are?  
Like the earth, ordering seas of emotions  
And impulses about, or do they dictate  
Us to sink in the whirlpool they create?

*Soumya Duggal*  
*B.A. (Hons) English, II yr.*

## **Dance of the Seven Seas**

---

Will You Dance with Me on an Empty Street?  
Will you dance with me on an empty street?  
To the song of our own pipe dreams,  
Blissfully unaware and completely free.  
Will you dance with me on an empty street?

We will be out of step and out of tune,  
But then it is just me and you.  
None to hear and none to see,  
As we dance and sing imperfectly.

So, will you dance with me on an empty street?  
And revel in invisibility,  
With gay abandon and uncensored feel.  
Will you dance with me on an empty street?

*Nikita Sharma*  
*B.A. (Hons), Economics, II yr*

## **Untitled**

---

"Flying around  
In circles;

Coming out,  
Only to be  
Shackled in by  
Definitions again.

Is this freedom  
Or just the taste of it?"

*Arushi Bhaskar*  
*B.A. (Hons), English, II yr.*

## Purple

---

I ponder by a window, I gaze out,  
I hear and unheed a distant shout.  
"What should I write?" I am thinking hard:  
An old tumbler? My first teacher? Starred  
and blighted visions come and go,  
A faint purple shadow steals the show.

A little girl in a printed tunic playing tranquilly comes into view.  
It reminds me of a dress my mother once lovingly sew.  
In that memory of the tunic, I rejoice  
Life back then was fun with toys.  
Of inequality and justice I didn't then care  
Discussions about wrong and right were rare.

The evening sky appears a deep shade of pink!  
The next memory rushes in like smell from a sink.

"You are now a gracious young lady." my fave aunt would say,  
I would eventually realize it rather execrably, one day.  
My innocence was no match for his devilish lusty eyes.  
This was the world of ruthless lies.

The sky now is dark, a murky violet.  
His diabolical touch still  
hurts in my stomach's pit.  
These are wounds time can't heal.  
Here, I sit by the window and write, unwinding  
life's taut reel.

Before my eyes, pink and violet blend and conjure up a purple sky,  
Epiphany strikes! Life' pink and violet form purple, in a firm tie.

*Kanika Yadav Nuniwal*  
*B.A. (Hons), English*

## **A New Radcliffe across the Oceans**

---

They lived in the same neighbourhood  
They were best friends since childhood  
Religious conflicts were nothing but a social creation!  
For their innocent eyes it was beyond imagination.

As tensions between the communities widened  
The atmosphere worsened and worsened.  
Their families opposed their friendship.  
Fundamentalism became a hardship.  
Can religious identity be a limitation  
For the friendship of twelve year old boys?  
But it became a restriction  
That overtook their simple joys.

Conflict in the mother land  
Among people forgotten beforehand  
Drives the religious consciousness  
Of folks thousands of miles away.  
For Indo-Americans tackling the situation had no other way!  
There in India religious conflict was day-by-day increasing,  
Here in USA, the Hindu and the Muslim,  
The Indian and Pakistani friends were also suffering!  
Religion again stood for separation, for antagonism!  
Even, in the so called  
Western, Modern & Developed American Society!  
Yes the scenario here, was not like there.  
It was quiet, it was calm  
But somewhere deep, in those innocent hearts  
Religious consciousness cropped up in a very wrong way.  
In the battle of religions  
No religion turned out to be victorious.  
The battle is never ending, it is continuous.

Rather it was Humanity which died!  
The spirit of humanism which died!

*Garima*  
*B.A. (Programme), III yr*

## **Crows in my Sleep**

---

I could hear them caw,  
And see what I saw,  
Unwelcomed and uninvited.  
My slumber blighted.

Strangely did my heart pace,  
At the sight of familiar face.  
A face kind and sweet,  
On a body with no feet.

She was eating,  
Out of a plate, empty.  
And began suddenly choking,  
On none, yet plenty.

She coughed ceaselessly.  
Then stopped. Just as suddenly.

As the first of the crows cawed.

Like an omen the dream dawned.  
The life of a loved one pawned,  
For the long dark night,  
Wrought with fear and fright.

At long last did dawn break,  
While I lay still awake.  
Waiting to hear from her,  
If only, she was still there.

*Nikita Sharma*  
*B.A. (Hons.), Economics II yr*

## **Noises**

---

The motorbike moves with a rolling thud,  
Across the municipal garbage dump.  
Where the cows graze and moo,  
Eating peels, plastic, a discarded shoe.  
A truck with heavy bearing,  
Then cars, horns blaring.  
Even a bicycle is shrill.  
Ting-a-ling goes its bell.  
Pigeons scamper on a tin roof.  
Squirrels chatter gay and aloof.

In all of this numbing noise,  
Its hard to hear my own voice.

*Nikita Sharma*  
*B.A. (Hons.), Economics II yr*

## New Girl in the City

---

I had written this article in my first year but still I feel the same, though I am now a little more at home!

Coming from a small city to this buzzing capital of dreams after the rigorous and tiring process of admission, I am among those who burnt the midnight oil and slogged for months to get that perfect score which would make the DU dream a reality. With teary goodbyes from my family, I came to this grand, historic, famous, beautiful college... the dream... Miranda House—exceptional in every way.

I had been a star student in my school and had received quite a lot of attention always but here, where the cream of the country congregates, I am at a loss. Here are the finest bunch of young ladies, everyone of whom had been like me and way better than me.

Having been a very pampered daughter, I am pushing myself to adjust in this wonderland - all independent and grown up...though I am still a kid. Hahaha... And I thought the boards were hell. NO BABE! Delhi's weather is. Coping with the extra long, spread out classes, the buzz of talented societies, their tough screening processes, the starting weeks of MH were a roller-coaster ride.

I can't help my smile when I am addressed as a Mirandian - the honour of being a brand new member of this exceptional and extraordinary league of women who evolve under the shades of palm trees, besides the beautiful flowers, on the stairs, under the mushrooms, or even in the classes. Proud to be a Mirandian.

*Oorja Tapan*  
*B.A. (Programme), II yr.*

## Reflection

---

It was so very hot. 47°C. Even if I change it to another unit, the figure just gets bigger. 116.6°F. No kidding! My semester papers were almost over. As I sat on my table, trying to figure out each Delhi sultan's major policies, my forearms kept getting stuck on my desk. Two years in Delhi hasn't made summer any easier. Coming from a place where the highest recorded temperature is 36°C, it has always been difficult for me. The only thing that kept me going in the exam hall was the water bottle and happiness in the thought of going home once the exams are over.

Delhi. This city has always found new ways to amuse me just when I thought I had learnt and experienced everything. Living hundreds of miles from home, in a room no larger or better than a box, I realized this isn't exactly what I dreamt of three years ago. I've seen that it is easy to lose a sense of purpose in such a situation.

People tend to misuse freedom easily. I've always been restrictive of my own freedom. It has been imprinted in me from very early on that authority is to be feared and rules obeyed; rebellion must be smothered. I guess it had to do

with the education system in an insurgent state. There are many things that I've been able to view from a different perspective only recently. I've learned many things that I didn't know three years back, not just History. And when I go too far off track, friends, college schedule and exams always brings the sense and the purpose back.

From where I stand, I don't see life perfectly laid out and set. But these years will all be part of a nostalgic early adulthood memory. Those hot summer days or these chilly winter days as I start my last semester will all become part of my memories of a strange city. All of us, students, seem very different in every way, with our own, different dreams. Not unlike the way we all came together in a humid July over two years ago, we'll all go on our own separate ways come June. When I've lived much of my life and I'm much older, I may realise that we were not very different after all. That, for a brief time we came together and shared some memories. From where I stand, I see limitless possibilities and the freedom to make my own mistakes and learn my own lessons.

*Athoibi Ningombam*  
*B.A. (Hons) History, III yr.*

## Obedience and Reason

---

I, like most children, was taught to obey; obey your parents, obey your teachers, obey elders, obey your superiors. But my mother, apart from all the traditional grooming, taught me also to reason. Every time I did not understand her instructions or the reason for them, I was encouraged to question, to ask for reasons and explanations. It is that lesson that I recall even to this day.

Today this particular lesson has significance for me because, for one, it allows me to go into things deeply; to understand the reasons behind them. Once I understand the reasons, I can understand the person; put myself in his/her shoes. I find that it helps more an often than not, preventing me from erring or committing myself to an action contrary to my own judgement. Once I am able to grasp the reasons, I can reconcile them with my own moral conscience; perhaps even understand that I would do the same in the same circumstances. Where reason is not apparent, I can resist the command. This, I feel, is more important.

Our generation was raised with greater freedoms but not the essential one: the right to question

authority. The events of the past year underline the tension between reason and obedience. Obedience without reason must be deemed more dangerous than an act of sin itself. Obedience without reason is the hallmark of dictatorial regimes, anarchies and might-is-right cultures. Surely we do not want our future generations to simply obey. We look towards the future with a hope that there are leaders somewhere on the horizon. An important step in that direction would be to teach ourselves and our children to question, to understand and to act upon their own moral conscience.

This is not to say that we must resist every command we face. It merely means that we internalise an instruction, reason it out to the best of our abilities and learn to understand one another more deeply. Possibly, with the aid of reasonable obedience and intellectual contemplation, we might learn to coexist with our differences, united by our reasoning and understanding of the other person, culture, caste, religion and/or gender.

*Madhulika Chebrol*  
*B.A. (Programme), III yr.*

## Why Are College Students Perpetually Broke?

---

\*puts her empty wallet on display\*

College is supposed to be your first step in the big bad world. And what is the first lesson that this big bad world teaches you? It throws at you the harsh reality of 'nabiwinabachcha, nabaapbadanabhaya, the whole thing is that kibhaiyasabsebadarupaiya!' And it drives its point home when your idealistic self, freshly out of its protective shell is feeling very powerful. You're standing out there thinking how the world is at your disposal now and it's time you owned it when suddenly your wallet quietly creeps out and whispers, beta, financial limitations.

Now, the funda behind it seems like an extremely simple one. Supply of Money = Demand of Money.

Except that it's not. There are different varieties of 'broke-ness' found in college.

Here are some types you'll definitely relate to!

### 1. The Pretentious Bloke

To put it very simply, there are these people out there who have somehow gotten into their heads the absurd idea that, apparently, being 'broke' is the new 'cool' in college. That is essentially what a pretentious bloke is all about. Now, where this idea originated from is as unexplainable a mystery as the popularity of the extremely disturbing underwear-exposing low waist jeans. (Seriously, how did that actually popularize?) Anyhow, you'll often find them declaring their 'broke-ness' before every group plan. The conversation would go something like this,

[At a random consumerism-driven-multinational-brand-bent-on-robbing-our-

country-of-its-domestic-production food joint]

You: So, buddy, what do you want to order?

Pretentious Bloke: Yaar, I'm broke. I think I'll just go with,

\*chooses a cheeseburger WITHOUT extra cheese\*

You: \*stares in disbelief\*

I like to believe that they've never really looked up the word 'broke' in a dictionary.

Word of Advice [to them]:

1. Buy a dictionary.

2. Watch a YouTube tutorial on how to use a dictionary.

3. Use a dictionary.

### 2. The 'Too Righteous'

I secretly respect these idiots a little. These new adults think it's time they stopped being a burden on their parents. (How's that for a noble thought?) That means no more elaborate wish lists for daddy to fulfill. But obviously with great life decisions come great consequences and trying to become independent is no piece of cake. So, as they stumble through their first steps of freedom, the one constant element in the initial part of this virtuous journey are..... empty wallets.

### 3. The Saara PaisaKhaane Par.

This particular type has my absolute and unconditional sympathy with them. I mean, hello? FOOD! These people are basically

characteristic foodies. Their Instagram accounts will make you drool, btw. But nothing's free in this shallow world. Not even something as holy as food. And even before these innocent victims of capitalism know it, all their pocket money disappears \*poof\* in an attempt to satiate their palates! So, when the last bit of money is gone in exchange of that double cheese margarita with a cheese burst crust, they have a singular phrase for everything else that they need,

“Help me, I'm poor!”

#### 4. The Kanjoos

I know this type needs no introduction. They exist in all spheres of life and college is no different. They'll always be 'broke' when it comes to giving a treat or throwing a party. It's almost like they are in a relationship with their money. And who would want to part with his/her beloved? :p

#### 5. The Pg Me RehneWala, Calculations KaMaara!

Last but most definitely not the least, this type is the most common in college. Freshly out of the cocoons of their homes, these new butterflies who decided to migrate from their hometowns

for higher education are in fact the most entitled to have the right to be broke. Living on your own for the first time can take a toll on you. Suddenly you are bogged down with responsibilities that you didn't even know existed. It is only when you realise that dhoodhaursabzikhudlanihai, does the reality actually hit you. So, amidst all that sabzi, even their jokes turn a bit organic.

My wallet is like an onion, when I open it, it makes me cry...

Whatever said and done, being broke will be something you'll fondly remember about college in another 30 years when your 50yr old self is sitting in his/her New York penthouse thinking about how far you've come along, whilst smokin' a cigar.

Or perhaps your wallet will always be your onion.

No, there is no in between. Haven't you heard? Jockey or nothing! ;)

Okay, I'll leave before I get more lame.

*Yusra Hasan*  
*B.A. (Hons) English, III yr.*

## Feminism and What Really, Really Begets It

---

I probably wasn't even a full 9 years old when my Star Wars crazy mother meticulously produced VCDs from a dingy video library and made me watch Episode I, II and III, thereby effectively ruining the greatest cinematic plot twist of all time. In those days, the only summer problems I had were questions about how and why Palpatine managed to make Anakin turn rogue. Episode IV, V and VI followed and I remember being enamoured by Han Solo and Luke Skywalker but most distinctly, I was so in awe of the unapologetic and indomitable spirit of Princess Leia. Oh, I wanted to be her, and how! All with a development of course, I also wanted to be a Jedi Master, but those are just minor details.

So you can imagine my shock, denial and the consequent pained acceptance, when I woke up this morning to loud headlines that said "ACTRESS CARRIE FISHER DIES AT 60" - and a seemingly morose, unhappy mother who barked across the hall that I was to mix my own milk. In a first, both mother and daughter shared a common sorrow for a non-familial loss, a loss of someone neither knew personally.

To be very honest, post Star Wars, I've seen only seen/ heard of Carrie Fisher in a smattering of other movies and so perhaps it is fair to say that like for several millions across the globe, she went down to me as Princess Leia Organa of Alderaan who bravely fought off Vader's forces, called out on Han for being a "stuck up, half witted, scruffy looking nerf herder", could wield a gun better than Luke and was subject to watching her planet and foster parents be decimated by the Death Star. To me, the star-struck 9 year old, if this was not ceaseless bravery, then what was really?

I grew up in a women-only household, comprising of a fairly badass working mom with a Leia-esque temper and tongue; a reasonably competent (will always deny I said this) sister, an orthodox and determined grandmother and well, a decrepit yet surprisingly loud, perennially ill great grandmother, who - like she reiterates - is three years older than the Queen. At this juncture, it is probably safe to say that a character like Leia's boded well in our lifestyle.

I don't really know of a way to describe how I am at 20. I know that I stubbornly don't know the difference between a man's job and a woman's job. I didn't want a doll or a car, I just wanted books and was occasionally treated to a film with an already ruined plot twist. I didn't dress in pink or blue, I just wore clothes that I thought were comfortable. I did all the things I wanted to do, much against the behest of the mother-and-above units. I played tennis, I swam and got tanned, I ran, I scraped my knees, I roasted in the sunlight, I picked up defunct pistols (licensed, I assure you) and rolled in the mud. As a happy consequence, the women in the house gave up on me and concluded that the dog and I were kindred spirits and continue to do so.

None of this came easy of course. When you're like that in a world that isn't quite like that, you tend to get picked on. Everyone tried everything to dissuade me from being so societally contemptible. I've pretty much had it all - cousins nagging me for keeping my hair too long and too boring, friends who've teased me for being "too much like a boy", family that still goes on about how I need to dress better and the most prevalent and prominent one of them all, of being a prude - and the various permutations of those. Except, to this day, I absolutely do not

understand what it is about my myriad actions that is termed too un-woman-like for me? I'm not supposed to sweat and stink, or not wear shorts for tennis when I'm older, or keep my locks braided and choose not to flip them around in a layered cut, or wear comfortable clothes at a party instead of the oft-chosen LBDs because..... of what again? I've never known, I'm not sure I'll ever know. That being said, I'm not sure I'd actually blame anyone, given social conditioning en generale.

Now to the point of why Carrie Fisher's passing has begun this conversation in my head. In the 13 years since I first watched Return Of The Jedi , I've subconsciously striven to model myself into a personal interpretation of Leia. To me, Carrie Fisher did not just play Leia, she was Leia. I've watched her over and over in endless interviews and found that she really was the embodiment of fierce independence, unfailing feminism and undiluted wit. She never once hesitated to call out the blatant misogyny or unfairness of anything, wasn't afraid to apologize or accept a mistake. She had a strong sense of right and wrong which, to me, was everything that Leia depicted on screen. She showed us, by example, how important it was that as women - and more generally as human beings - we take our positions seriously and that cowing down to rampant patriarchy is not something any of us were born to do.

I've never been one who was very ostentatious about her opinions on the happenings of the world since as a matter of principle, I think that everyone has the right to reserve their own relative opinions of the same - unless of course, it is an actual travesty like the election of Donald Trump. In the same maverick fashion, I don't believe in having to be loud about things that you do for the sake of humanity's betterment. Much like I did in my childhood, I prefer the

quiet, strong way of being a feminist - you stubbornly refuse to accept the patriarchal norm and keep going about your thing. You don't sit quiet when you see/ hear something that is fundamentally wrong and you aren't behoved into being nonchalant about it. I think that the most raucous, resounding way that you can assert your identity as a feminist is to act more than you speak. Fight for your worth, whoever you are - male, female, both, neither - and never forget to be gracious about it. Let nobody tell you what to do and what not to do since I can assure you that there are no diktats about what you "should" be doing because of how and where luck decided to place you. Nobody is any less or any more because of their sex, their orientation, their race, their anything really - because at the end of the day, all of us are humans.

Not ducks.

That is why we need more people as proudly and brutally honest as Carrie was. She was an unending source of inspiration, in and out of her role as Leia and in the same breath, a beautiful human being. It is really purveyors of the cause like her that should make us ask questions like those in the title (that I'm clearly very proud of).

This is a profound moment in my adult life because I'd like to think that I've succeeded in growing up to be my own version of Carrie/ Leia. There's a long way to go, but I'm fairly certain I'll get there - to the mild distaste of a few generations of progenitors I'm sure.

This is for Carrie. The Force was strong in this one.

*Spandana Durga*  
*B.A. (Hons), Maths, III yr.*

## The Land of Doni and Polo

---

It has been more than a decade since I was at Pakke or Pakhui valley. It was the biting winter of January 2004. Geographically speaking, the valley is in Seijosa subdivision of East Kameng district of Arunachal Pradesh. Seijosa is an enclosed world miraculously planned by nature. Heavy mountains beautifully attired with evergreen trees and the sapphire-hued Pakke River with its innumerable streams garland the valley. The majority of inhabitants are of the Nyishi tribe, protectively shielded and taken care by their Dony and Polo, the Sun and the Moon, respectively. It was difficult to know the place then at a structural level, for my age, especially as I only knew my mother tongue Maithili, not even Hindi. Yes, my childhood started in the lap of mighty Himalayas.

The mainstream education in Seijosa at every level goes along with community consciousness, wildlife awareness and socio-cultural ethos of tribal world. The Nyishis, numbering about 300,000 people, are spread across six districts of Arunachal Pradesh— Papum Pare, parts of Lower Subansari, East Kameng, parts of Upper Subansari, Kra Dadi and some parts of Assam. Nyishi, etymologically, is combination of 'Nyi' meaning man while the word 'shi' denotes 'a being', i.e. a civilized human being. Their dialect was beyond my comprehension despite good efforts made by my comrades. The only phrase I remember is 'ale pa', which means, 'I am fine'. Research on North Eastern Indian languages shows that the Nyishi language belongs to the Sino-Tibetan family. However, the origin is controversial. It is a matter of concern that only a handful of the younger generation speak it.

New Year's Eve is special not just for the midnight

gala but for the celebration of 'Indigenous Faith Day' organized at Namlo, a sacred place where Dony (Sun God) is worshipped. I remember the long queue of students marching towards Namlo under the escort of teachers. This community gathering was very important to understand the lives of the Nyishis closely. They are primarily agriculturists who practice shifting cultivation (rag in Nyishi). The principle crops are paddy, maize, cucumber, ginger, millets etc. How can I forget 'apong', a locally-made drink which is of two types – 'pone' (made with rice) and 'poling' (made of millet). It was at one of these social gatherings that I had apong in a bamboo jar for the first time out of fascination in VIII standard. Thank God my Mom was unaware of it but the drink served for the perfect weekend sleep!!! A general diet includes forest resources like fruits, roots, bamboo shoots, wild animals, fish, wild leafy vegetables. Traditional ways of preparing them include steaming, roasting and smoking. The elderly people often talk of barter exchange, though they are now moving towards a market-based exchange economy.

Festivals, cultural events and all constructive programs are followed by traditional songs and dances. My schoolmates, often Nyishi girls, were enthusiastic participants. The attire is an important component of dance. The women generally wear a sleeveless covering of striped or plain cloth; the upper part is tucked tightly over the breast and envelops the body from the armpits to the middle of the calves. The waist is adorned with a girdle consisting of metal disc. Their ornaments include multicoloured bead necklaces, brass chains, metal bells, huge brass or silver earrings and heavy bracelets of various metals. Nowadays, only a few male members,

like the village headman (Gaon budha), wear the traditional attire. This includes a sleeveless 'shirt' made from thick cotton or wool fastened around the throat and shoulder. They also carry a machete called 'dao'. During war, the chest and back are covered with a shield made of indigenous fibre of animal fur.

Nyokum is the festival celebrated by the Nyishis where they commemorate Aabhu Thanyi, the ancestor of an animist tribe of Tibet. It is basically a harvest festival which coincides with lunar phases or agricultural cycles. It is celebrated between 24 and 26 February each year. Most Nyishis have been converted to Christianity since 1972; this effectively led to an eradication of Nyishi culture, language, religion and knowledge systems. Small groups of Hindus also exist among them. There are ongoing efforts for the preservation of indigenous cultures.

Wildlife protection is important issue among local authorities, scholars and inhabitants. Pakke Sanctuary was declared as 26th Project Tiger Reserve in 2002 under National Tiger Conservation Authority and was earlier a part of Khellong Forest Division. The Sanctuary adjoins Nameri National Park of Assam and Eaglenest Wildlife sanctuary. The Wildlife Authority of India regularly organizes community level awareness programs and students are welcomed for research activities. These projects provide

great education about the richness of the local flora and fauna. The habitat types are lowland semi-evergreen forest and Eastern Himalayan broadleaf forests. Around 600 types of orchids are found in the region. I remember the last few weeks of every academic session when the surroundings got completely submerged in the white blossoms of orchid. These orchids are called 'vacation flowers' by school kids as holidays followed after the blossom. A wide variety of woods are found from Euphorbiaceae and Lauraceae families. Most of the areas have a profuse growth of bamboo, cane, palm and many varieties of medicinal herbs. The predominant fauna include the tiger, leopard, wild dog, Asiatic jackal, elephant, Capped macaque, King cobra, Great Indian Hornbill and at least 500 varieties of butterflies. The Nyishis' traditional cane helmets surmounted by the crest of a hornbill beak (known as padam) have considerably affected the population of this bird. There has been introduction of artificial 'Padam' made up with fibreglass and 70% of Nyishis have already accepted it.

Those eight years of my life, now obviously a dream, were splendid and superb. The time period which was free from all biases and far from the hue and cry of materialistic life. That wind carried the essence of egalitarianism, love, peace and consecrates honesty and simplicity. It seems an utopia but I experienced it. Welcome to the Land of Doni and Polo...

*Shivangini Jha*  
*B. A. (Hons) History III year*

## Knock Knock -Anxiety

---

Anxiety is my rant of the day. Nothing propels you into adulthood like anxiety, and now, I too can claim to be an adult. Until you have experienced your first anxiety attack you cannot say that you have entered the arena of adults. Yes, now I can safely say I am an adult and this is how it begins.

### The Chosen One

You could be walking in public, travelling in the metro or just relaxing at home (a preferred place) when suddenly a ghost taps you on your shoulder, and uninvited, comes and sits on your chest. You can do nothing but give it a strained smile. Thus, it makes you its home and so you've been chosen. Then before you can blink, it is comfortably settling on your chest and smirking at your plans, without asking, might I add (how impolite!). Congratulations, you have been chosen!

### The Quest Begins

Then the Pandora's Box is unleashed and you are introduced to shortness of breath, clammy hands and tremors. They sound more like symptoms of a crush than anxiety. If only anxiety also ignored your existence. All we need is the same unattainable feeling and pure ignorance of our existence and it might totally be a crush. Although I might prefer the in-attainability and ignorance in this case (don't lie).

The most incredible thing about anxiety is that it is completely unnoticeable, to others, that is. You could be in the middle of a breakdown, staggering under its crippling weight and nothing would show on your face. Many choose to be impervious, ignoring that which they can't understand, which they haven't experienced. Of course now that you have an anxiety attack,

people around you can't even appreciate the delicacy of the moment. Can't they see you are doing some staggeringly heavy weight-lifting? But no, they won't try to understand that you are crippling under its weight and poke you. I mean, seriously, here I am having a meltdown and you are asking me about concerts, ice-creams and mundane hubbub- a bit not good, dude!

### Action and Reaction

Later when you are done auditioning for some melodramatic movie or soap opera, it's time to face the music. How do we react to this? Screaming, shouting and crying. Maybe a touch of embarrassment (okay more than a touch, sure loads of it). Then comes the sinking realization- my crush totally betrayed me. "Yo! Anxiety, you weren't supposed to get emotional and clingy. Didn't we discuss boundary regimes and personal space? You are much worse than the relatives harping about our future marriage plans."

### Bitter Victory

Finally comes the acceptance that yes, we are not immortal machines but rather humans. We are not above the reach of pesky feelings. Although, if you are a psychopath or a sociopath, well lucky you, you are not bound by the same laws of sentimentality. But for us mundane folks, after entertaining the demon, we better get ready for further unexpected visits. Yet no matter how much you prepare, you will still be caught off-guard. So folks, the only advice—hope for the best, be ready for the worst (cliché I know, but it totally works). Well this is me signing off, have great anxiety attacks and make us proud.

*Shreya Vashishtha*  
*B.A. (Program), III yr.*

## Time for Anger

---

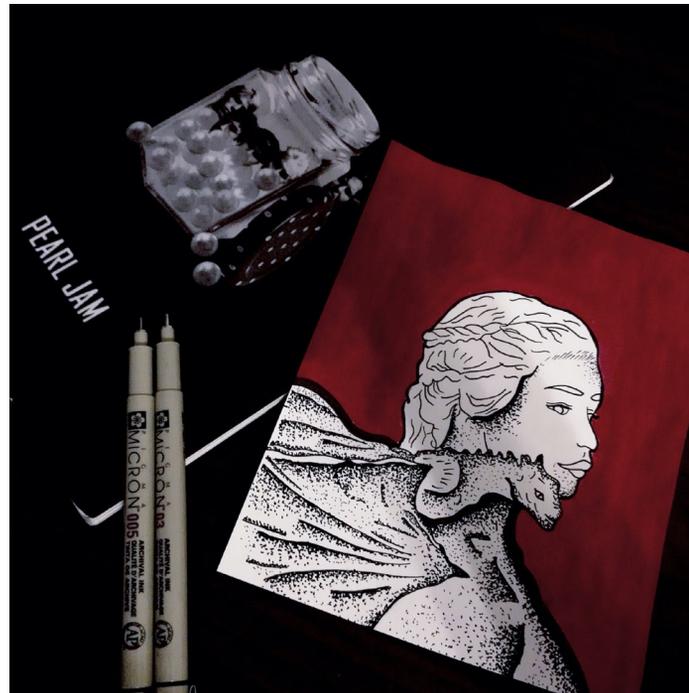
"A girl beaten and raped found dead near the drain."

Society is formulated to ensure smooth functioning of our lives, but the true picture of society is a horrifying one. In this society, every "trendy" abuse is about raping someone's mother or sister. Everything, every little thing, is concentrated on making a woman feel lesser: taking their husband's surname after marriage, submitting to the custom of dowry, to burquas and hijabs, weighed down by mangalsutras that work as chains on the slaves... believe me, I can go on and on.

It is not merely due to the faults in our police and law system that rape continues. NO! It is the way we are brought up; it is the implicit assumption that males are stronger and superior to females in every aspect. Our laws may give equal rights and power to women but the society we live in does not allow the implementation of any law.

*Sanchita Jain*

*B.A. (Hons) English, III yr.*



**Nimisha Randhar**  
Ist Year, Economics Hons

## Cashless Society- a Utopia?

---

If three-quarters of the population in an advanced economy like the United States appear to either favour cash payments or a mix of both cash and non-cash payments while making purchases, how challenging will it be for a developing country to transition to a so-called cashless economy?

Cash is the most powerful instrument of financial inclusion. Anyone can access it directly, without depending on rent-seeking technological or financial intermediaries. Once you have it, you can spend it whenever, wherever, and in whatever quantity you want to, without anyone being able to track you doing it and without having any threat of being a victim of cybercrime. Do you want governments, banks or payment processors to have potential access to that information? The power this would hand them is enormous and the potential scope for Orwellian levels of surveillance is terrifying. There is something inherently icky about having every single transaction of ours recorded somewhere for eternity.

Cash empowers its users. It enables them to buy and sell, and store their wealth, without being dependent on anyone else. They can stay outside the financial system, if they so desire. This does not mean that we should all take our money out of the bank, but that we should all have the option. Cash gives us that option. The financial system was actually a barrier to progress for the world's poor, while cash was a facilitator for them due to the digital divide between the rich and poor. Also, cash has its uses for small transactions – a chocolate bar, a newspaper, a pint of milk. It will always be the most direct and secure form of payment. Cash transactions

require no technical knowledge whatsoever. To the vast majority of consumers, the process of operating a digital wallet, pin credit card or even using a one-time password as a second factor of authentication is technically challenging and a reason in itself to avoid electronic payments.

There are basic freedoms and rights that we take for that the mere thought of taking them away will act as a major irritant to transition to a cashless society. Thus this “grand cultural revolution” (in the words of M. Venkaiah Naidu) will be ushered in through an executive fiat from above rather than emerging organically from the people. This is in consonance with Marx’s famous remark that “the ideas of the ruling class are in every epoch the ruling ideas”.

A survey on online shopping and e-commerce conducted by the U.S.-based Pew Research Centre revealed that nearly a fourth of Americans use cash for all or almost all of their purchases during a typical week, in an economy that is overwhelmingly dominated by non-cash payment options. Less than a quarter of those surveyed go for non-cash or cashless purchases and more than half tended to use a mix of both cash and cashless payment modes. The Pew survey also found that 60 per cent Americans “try to make sure that they have at least some cash on hand, just in case they need it,” What this survey reveals is that cash has not vanished from most people’s lives despite non-cash options being widely available. Other reports too suggest that while the share of cash in total consumer transactions has declined, it is in no place being written off as a significant option. It is also important to note that currency in circulation has been steadily increasing in the

U.S., and demand for higher denominations has grown since the 2008 financial crisis. “Despite innovations in smartphone technology and mobile payment apps, data on the amount of currency in circulation suggest that demand for cash is strong.

In fact, the logistical difficulty of getting everyone on board the cashless ship is itself a herculean task. The World Bank estimates that there are nearly two billion people in the world without a bank account. In India, the number of people without a bank account is about quarter of a billion. Even those who have a namesake bank account (those created during the Jan Dhan drive, for example) would prefer to use cash for most of their day-to-day transactions; 43 %

of the accounts in India are, in fact, dormant accounts though there are attempts to change this. As of April 2015, only 15% of adults in India reported using a bank account to make or receive payments.

A completely cashless society is practically not possible. An optimal mix of digital payments and cash can stave off the dystopian consequences of a cashless society, while simultaneously maximising on the efficiency benefits that cashless transactions can provide. We should not get carried away by the visions of a cashless society and proceed with caution.

*V. Juhi Sai*

*B. A. (Hons) Political Science, III yr*

## How Demonetization could've been Better Organised

---

If Indian comedians' tweets are anything to go by, it has generally been agreed upon that the government's demonetization scheme could've been managed way more efficiently. But they are not. Fine, let's go by what Manmohan Singh so eloquently said in the Rajya Sabha, while doing a stellar economic-dementor impression with that pessimism. So what could've been done? I'm no economist, but having experienced standing in queues for a longer time than ideal, I came up with the following suggestions to improve the process significantly:

### 1. Install giant LED TVs near the queues

Giant TVs, either mounted on walls or just held by 4 people should've been placed, with a) 9XM playing on them, because who can get mad at the Dear Zindagi trailers? or b) documentaries of humanity's greatest moments, like the moon landing, so that you do not lose faith in humanity after forced interactions of hours, seeing people push others, sweat, fight, pick their noses, and remember that we can still do great things. Plus, those 4 people will be paid obviously, so there's employment generation. Boom. More like economic boom, to be precise.

### 2. Online Portal for booking space in lines

A website, like [areyhamarejawantoh.gov.in](http://areyhamarejawantoh.gov.in) or [whatyougonnadoaboutitmitron.gov.in](http://whatyougonnadoaboutitmitron.gov.in) should've been setup, where not only can you fix appointment for your number in the line, but also decide how you'll spend that time. Filters would be available to mention your favourite books, movies, songs, shows so that you are matched with people of similar tastes; and they are placed next to you in the line. You might end

up walking away with cash, plus a best friend/soul mate or both in one. Okay that's way too far-fetched. There's no way you can get cash in just one day in the lines.

### 3. Live Entertainment

Yes, both animal cruelty and child labour is bad but the end-products of both are entertaining. So, for a temporary period let's take it easy on the hunting and child labour laws (or keep them the same, doesn't really matter) and setup some live, circus like entertainment near the queues. Again, we're getting ekteer se do shikaar with employment generation as well as some kids out of school fixing the abysmal student: teacher ratio in classrooms.

### 4. Renting Amenities

Now I've heard of Pizza delivery in these queues (by heard, I mean read on Whatsapp family groups which have questionable factual basis) and that's a good step. Let us take it up a notch. Phone battery power banks, gharkakhana, a pillow, sleeping bag, a book, a security guard who guides your money as you rest in the sleeping bag, your personal bodyguard who will protect you from creepy molesters in the queues, and this is just the beginning. Uber-like apps will also come up, further increasing job opportunities.

### 5. The Good Old Days

Now you're thinking, well that's all well and good, but how will the payment for these things happen, given that people lack money? This is where we take a lesson from history and revert

back to the days of the Barter System. ‘Will you lend me your Harry Potter while I stand in the queue? And I can give you Lord of the Rings when your turn comes? Deal!’ Furthermore, in order to equate what the equivalent of lending your power bank for 3 hours is, in terms of hours to be served as personal creep-repellent bodyguard, a new profession will emerge- Indian Appropriators Services (I.A.S.), who’ll appropriate relative values to the exchanged goods.

See? If we all focus on the problems of the urban areas and become as capitalistic as we can, there will be no problem at all. So stop whining, you congressi communists. This is where we really see the magical boon that is capitalism.

P.S.-This is all in humour. But I’d be lying if I said that at least the TVs aren’t achievable.

*Rishika Singh*  
*B.A. (Programme), I yr.*



*DikshaBhorla*  
*B.A Honors (English) , III Year*

## Love Letter to my Beloved

---

Dear Love,

I sit on the steps of your porch, watching the evening sun set, waiting for dusk to settle in and the storm within me to settle down. As I write this I am slightly breathless, partly nervous but mostly astounded. Astounded by the events that unfolded in the last few months, by the enigma of this place, by my sheer inability to pen down something that is worth you and by the enormity of the void your absence has created. You left me. In the blink of an eye, you were gone, shattering all your hollow promises and my own self.

It has almost been a week since I last came here. The garden is the same as you had left it. The lush green grass is slightly unkempt and the pathway leading to the gate is covered in a blanket of dried gulmohurs. The wild creepers still form a veil over the fence and the red roses still adorn the steps of this magnificent porch. I always thought that it looked surreal. This place was a kind of utopia that worked strokes of magic in our late-night musings and conversations.

But strangely today, I don't feel any divinity at all. Maybe it was your presence that made this place extraordinary. We could have sat here and created our perfect little world. But now, it hurts me to know that I have to live without you. Forever. I hate to admit this but I miss you a lot. Perhaps, I returned to this place to take something I have left behind; a lost piece of my heart seeking solace in this safe haven and finding panacea to my sorrows.

Yet I am unable to find comfort. This place asphyxiates me, haunts me with the ghost of your memories. Memories and broken dreams stream

down my face with a catharsis of emotion. It is funny how the 'good memories' are always cried for and the 'bad' ones are laughed at. Shouldn't it be the opposite? But you have become a sad memory and I cannot imagine laughing at this in an obscure future.

Clusters of stars crowd the sky. The same sky that enveloped us as we poured our hearts out to each other. You were the dreamer and I, the believer. I try to make your face in the constellations like you did when you missed your parents. Once again I am overwhelmed with nostalgia and longing. I desperately wish that you knew how it feels to be bereaved although I don't want you to go through the gates of hell. I chuckled silently as I reminisced that how enmeshed in the bewitching fantasy of love, I thought that we would never end.

They say love never dies. Yes. Love never dies, but lovers do. Our love too would never die. I will come back to here again, however much this place sucks the life out of me. I will return each day to search for you in the cool breeze that brushes against my skin, in the song of the nightingales and in the sparkle of the moon. Either I will find you again with the lost enchantment of this garden or become an unfeeling human untouched by the memories of this garden. This I will do until your memory no longer haunts me, until your name brings a smile and not tears. I must survive and go on but without losing you. You are and you will always be the love of my life. A believer I was and a believer I am. I will keep my promise and follow you to eternity.

Your lover,

*Sumbul Moin*  
*B.A. (Hons) Maths, III yr.*

## **I Love You**

---

It is fair for me to drop you home, even though you don't know I'm dropping you and I'm half a mile behind you. It is fair for me to bring a rose to you outside your house and ask you to join me for a coffee. If you refuse, it's fair for me to push you away and tell my friends you're a 'slut'. It is pretty fair for me to hug you and give an affectionate peck on your cheek, oh how you're shouting with delight! You pushed me? Well, it is fair for me to take you forcefully to that dark room and make 'love' to you... After all, all is fair in love and war, and baby, I love you.

*Shireen Manocha*  
*B.A. (Hons) Political Science, 1 yr.*



**Nimisha Randhar**  
**Ist Year, Economics Hons**

## Cobwebs

---

Cobwebs. Half opened cartons. Dusty shelves. Broken light bulbs. Best books. Solace much? Apparently. More than the shimmering lights of the loudest disco clubs and the periodic doses of fake affection on social media. Irony much? That small attic in one shy area of the huge mansion gave her what she craved almost every time—comfort.

Being best friends with the peace of that attic was initially questioned by her family on grounds of outright escapism from the practicality of their "real world". But who knew that was the only place where her reality could breathe. The only place where the route to her dark purple bruises need not be concealed.

Ten years have passed since that chirpy little girl in her early teens lost her sense of self. Ten years have passed since that naive girl who found the world a little too good, lost all hopes even from her family. Thought they cared but time and again, the incessant ruckus of the house with relatives pouring in like rains on heavy monsoon days, she couldn't fathom whom to approach and ask for a remedy. The pain had been too much. And then, she found her saviour in books. Her attic.

As she sits there, alone yet complete, she traces the purple bruises which time failed to heal. She remembers the time when chocolates could make her happy anytime. And maybe, this muse brought a familiar face very close to her. A little too close, in fact. And there, she sighs heavily. She recalls her younger self closing the bathroom door and crying for hours unable to find words to tell what had happened to her. Totally beyond her comprehension it was. And exactly was her fault? Her profound love for chocolates? Or her

roaming freely in her house?

Months passed but the familiar face never made her feel alone. Never left her. Never. Succumbing to the grief, she let a year pass. No answers came. Truly, grief and confusion make the worst combination ever.

Then one fine day, when she tried to open up to her mother, the familiar face caught her. She froze. Her heart racing wildly, she rushed to hide herself somewhere. Hours later, in one stray corner of the storeroom, the purple bruises were breathed to life. Till date, the storeroom bears evidence to her piteous cries.

Ten years have passed. Familiar face still visits the house. He is still greeted by her. She smiles. He laughs. To everyone in the house, it is possibly the sweetest thing ever. But to her, hollowness is the most supreme emotion.

Family promises are made at the dining table, friendship ties are labelled "forever", everyone promises to be there for you, but nothing remains except lies. People have everything at their disposal but the truth. Her fake smiles, cheerful face and loquacious personality offend her sad soul. Like the ambiguous colour purple, made by combining two colours, her gloomy soul is at constant war with her vivacious personality. And these emotions rip her soul apart.

As she sits there in the attic, looking at the sky, the twilight instils a belief, a desire, in her. That tomorrow, maybe someday, that lost self esteem will hug her back. The purplish sky, offers her a hope, that one day, she will find herself. Sometime.

*Prashasti Dwivedi*  
*B.Sc. (Hons) Mathematics, I yr.*

## Revenge

---

You put me on fire, I would say, mild fire. You wanted me to burn, but slowly and gradually. You wanted to enjoy it till I lasted. Little did you know, I wouldn't die out till I take my revenge. I will burn your inside, completely and wholly.

You held me carelessly, tossing and turning me, I knew it would end with you leaving me somewhere on the corner of this street, half dead, waiting to die completely. Little did you know, I wouldn't die out till I take my revenge. I will make sure you regret not listening to the numerous warnings.

You finally stomped upon me one last time, but did not even wait for me to extinguish. You let me die, alone. Little did you know, I wouldn't die out till I take my revenge. I will make your family's heart ache for you.

You walked away, gracefully pulling at another one of us. I do feel jealous I'm not the one you're

kissing right now. You used me, and then you left me to die, useless for anyone else. Little did you know I wouldn't die out till I take my revenge. I will make you shriek in the loom hospital room.

I am pretty.

I am sleek.

I have all the qualities of being loved.

Yet burnt,

I am a cigarette.

And little did you know I wouldn't die out till I take my revenge.

*Shireen Manocha*  
*B.A. (Hons) Political Science I yr.*

## Chasing Homes

---

It has been around an year and a half since I left Calcutta and by extension left, what we popularly call our cities, my home. For about a year, I had been under a rather naive assumption that one major event equates to literary inspiration. Hence, my arrival in Delhi, as fresh as a daisy, a David at the door of Delhi's Salem House, would be stimulating enough for a yearlong worth of material and would ensure a spray of philosophical realizations like irregular monsoon showers. But now I realize that my experience in this perplexing city and this wonderful college feels like some dramatic Bollywood love affair with a handful of amusing songs and dance sequences that you keep humming while dusting corners, a bunch of sad songs shot in grey tones with a contemplative hero staring at the night sky and so many airport endings.

An airport is perhaps the most the fascinating repository of human emotions and stories. Every goodbye has a story left to tell. Every arrival has a promise. Every suitcase on the conveyor belt wants to be opened. They would probably weigh heavier with the new memories that have been stuffed in. I always wished I could pack like a little boy. A little boy is excited and wished he could take everything he loved with him; the little red steam engine that runs around a haphazard living room track; his first book that must have been read out to him a hundred times; a tiny glass teddy that he found too fascinating to let it remain on the shelves reserved for random showpieces. It would be quite wonderful to fold every lovely memory we have and arrange them in neat piles in their Skybag homes. But we aren't little. We are adults; chaotic little creatures with our egos and bad days and impatient mistakes and messy beds and late night productivity and

empty wallets and rent for demanding landlords. We are the suitcases packed in a hurry. The ones that our mothers don't have the time to go over and probably never will because we need to know how to pack. I am still learning to pack. I am somewhere between my mother's elaborate packing spread over weeks and my friend's 10 minutes wrap up.

Of late, I have been often wondering on what exactly constitutes my home. Is it my city? Is it the house that my grandfather built and my parents extended? Most of us think of home as somewhere our grandparents have been, our parents and siblings are and where we dart to every semester break. But for me, it has ceased to be this simple. And given the number of transfers, leases, financial hardships and highs that every one of us has faced, is it possible for us to narrow down on one place as home? We may have our houses and our apartments but they all seem to lack a sense of completion. Maybe I have to use comfort and home interchangeably now. It is for the simple reason that people are scattered. Memories are scattered all over the country. Our sense of happiness is more intricate than two scoops of vanilla with hot chocolate. Stranger things delight us. We are hurt in more unexpected ways. We cope in different ways. While I will never underestimate the power of ice-cream, the truth remains that I have begun to revel in the presence of complication. Not that I understand why we do this.

Someone once wrote for me on the first page of a favourite book, "Vidisha, life is very simple". It most obviously seems like such an utopian ideal and very difficult to ingrain but graceful simplicity is a beautiful thing. In tenth

grade, I remember romanticizing FitzGerald's *Gatsby* and thought of them bunch as wonderful people. But today, I would argue that *The Great Gatsby* is a literary wonder, a beautiful book with harmonious language, about a bunch of very miserable and conceited people, chasing pleasures that the Great American Dream could not buy but which they were determined to achieve through absurd and exasperating means. Holden Caulfield too has his own time. I read *Catcher in the Rye* when I was at the threshold of an angry adulthood and it was a fundamental experience for me. However, a couple of months ago, a reader friend started on the book and dismissed it as a whiny monologue of a very complicated teenager. Holden's detachment did not sadden her. What upset her is the fact she wasn't asked to perform any of the seven experiments she had prepared. A sadistic shuffle of chits resulted in her being asked to conduct the eighth experiment and ensured a good laugh for the examiner who was very intrigued by the science she was cooking up. Probably, the only thing Time doesn't bother to change is its inherent inclinations towards change. Experiences go through a fairly elaborate process before changing into memories.

So like everything else, homes change. It is because I think maybe a search for comfort and reassurance now exceeds a definition of home based on real estate. I love my home. It has a flavour of old sentiments and hot jalebis with sticky centres of sugary syrup. But we are all over the place and now my exploration gravitates towards a sense of fulfilment. About a year ago, my family was stuck in one of those so called "eco-friendly" resorts, an adjective they used to justify the presence of a fat hen that dined next to me in the restaurant and flapped its wings forebodingly every time I raised a chicken leg. A year later, we spotted the same resort in a film

where it had been used to recreate a reformation home for former inmates. Needless to say, it was not the very best vacation in terms of the resort. But it was in the same vacation that I bought sweets in small earthen pots from a man who recited soulful poetry as he sold them; his rustic poetry and the clay bhaad too are very near to becoming memories. But given the obese hen, the poor rooms with cold walls and goats gnawing on the bush outside my cottage, I have felt pleasant, at ease and very sentient of the lovely winter weather and the red soil that rose in circles around the white trunks of the trees lining the river Kopai. Such beautiful landscapes; all capable of making me feel at home. My friends constitute a very amusing family. We are very funny people. Our appetite, our long periods of waiting on benches outside Patel Chest photocopy shops, our photographs, our blues, our pooling of resources for birthday presents, our late afternoons lounging in the canteen, our calculations, our adjustments; they delight me and make me feel wonderful every day. The things we have to do for ourselves will only get tougher. I think I have to do a fair amount of math this year and that terrifies me. But what is math when faced with our joys and musings about life in the red-brick corridors of MH?

Like everyone else on this cramped planet, I am searching for something. While studying the Renaissance in detail, I came across a number of colorful figures like the inventor of modern literate pornography, Pietro Aretino or Francois Rabelais, whose works had a healthy sprinkling of sexual double-entendres and bawdy songs. But it is Francois Rabelais's last words which deeply touched me. Rabelais's final pearls of wisdom, I go to seek a Great perhaps is scribbled at the top of every notebook that bears my scrawny handwriting. I overlook the

## ***THIS PLACE WE CALL HOME***

substantial debate about whether or not these were Rabelais' exact words, for it is one of the truest things I have heard. My Great could be anything; love, friendship, travel, literature or a hot meal, preferably with extra cheese. So yes, I am chasing homes. Chasing an unknown Great. Chasing the warmth of the winter sunshine that streams through the glass window of an empty

store where you are sitting in silence, reading Tales of Fosterganj with a silent someone to share the occasional laugh with.

***Vidisha Ghosh***  
***B.A. (Hons) History, II yr.***



**Shreya Das**  
**IInd Year, History Hons**

## **Incident of Intolerance at Miranda House**

---

[Utterly disappointing.]

We, at Miranda House, take particular pride in the enlightening character of our classroom spaces. Ideas about being liberal, accepting and tolerant as progressive individuals of our society can be heard echoing in the corridors. So much so that you can almost hear the words ‘freedom’ and ‘equality’ bounce off the red brick walls. But amidst all THIS promising idealism, this happens.

One happy afternoon, two North Eastern girls from the Miranda House Residence had gone out to eat. Now, anyone who has ever been a hosteller can gauge the worth of ‘good food’ (particularly non-vegetarian, if you are one) and consequently relate to their happiness. So these two girls went out, had a blissful lunch and got some pork and beef packed for later to eat in place of the watery daal that the mess had to offer. They kept the meat in a bowl, carefully marked it with stick notes that mentioned their names and the fact that it was pork and beef and put it in the meat section of the fridge with happy hopes.

The moon completed a revolution and tomorrow arrived.

When they went to retrieve their ‘luxury’ (for it is a luxury for a hosteller), the bowl was empty and flipped and the notes were found strewn.

Somebody had actually thrown out their food.

But, of course. How dare they eat ‘pork and beef’ in the hostel? Or worse, how dare they

‘contaminate’ the fridge (obviously the fact that they kept it in the meat section doesn’t matter)?

Sounds, singularly absurd, right?

But it did happen and doesn’t even end here. Absolutely furious, the two girls wrote a notice venting their anger about what had happened and stuck it. Within the span of five minutes, that noticed was found ripped into pieces.

Yes, torn into bits.

Now, before you brush this story aside calling it an insignificant event. Let me tell you how it is not insignificant in the least. It is in incidents such as this that the looming ring-wing ideologies surface and we are reminded of how gripping the tentacles of extremist beliefs can be. Please allow me to emphasise on the gravity of the situation. Miranda House is one of the top five arts colleges university of this country. And the inhabitants of MH Residence supposedly comprise the best of students. If this is what is happening in what should be the most liberal space of this country, what of the rest of this land? This kind of hostile intolerance regarding something as simple as food is terribly alarming, especially with the various ‘meat-bans’ in the larger picture.

This kind of hypocrisy between classroom and real-life situations gives me pause. I hope it gives you too.

*Yusra Hasan*  
*B.A. (Hons) English, III yr.*

## 5 Places in Miranda House That You Never Knew Existed!

---

Secrets have been unveiled.

Are you this person?

[A Regular Conversation]

Random Inquisitive Individual: Which college?

You: *\*secretly flips hair in mind\** Miranda House.

As long as you're not too smug about it, you can be proud about being a Mirandian. However, kindly hold your horses for a bit. Are you sure you're all that entitled to do so? Can you proudly claim that you know Miranda like the back of your hand?

You: Uhh...yeah!

Me: Oh, no honey, you don't.

How can I say so? Well, I don't say things. I prove 'em. So, here's exactly that. A list of proofs. And what does this list constitute, one may ask. Well, it is a list of all the places that are physically present in the Miranda House campus and you probably had no idea regarding their existence. Which means you don't know Miranda like the back of your hand.

But now you will.

Because of me.

Yes, I'm about to serve all the secrets on a platter.

You're welcome.

### 1. A Well-Equipped Gym



You: *\*gapes\**

Oh, yes.

Located adjacent to the Sports Department, Miranda House boasts an extremely well-equipped fitness centre open to all its students. But few of us—other than the 'sports quota' students—are even aware of the existence of these beautiful machines. So, heads up to all the potential fitness junkies out there in Miranda, here's a place of respite for you within your very own college. You'd better get a pair of shoes, some track pants and a good playlist ready for next semester!

PS: Don't forget to pick your jaw off the floor.

### 2. The MH Paper Recycling Unit



Not only is Miranda academically proficient but also environmentally so. MH produces its own recycled paper. But did you know about it?

Yeah, I didn't think so either. The Recycling Unit of Miranda House is located near the hostel gate of Miranda House and if you're a Mirandian, then you've definitely passed by it at least a million times. Puzzled? Well, remember the two adjacent hut-like structures near the hostel gate? You always wondered what they were from a distance but were too lazy to actually walk up to them. Well, one of them is an extremely efficient recycling unit. The other? Go find that out yourself, you lazy bum!

### 3. A Mysterious Trapdoor



This is one of the most interesting places I stumbled upon (purely by chance) during one of my initial 'college-exploring' quests. I mean, who wouldn't find a secret trapdoor in college interesting? It gave off such an enigmatic aura. Almost like walking through the pages of a mystery novel and that too as a student of literature. Does life get any better?

But I apologize in advance for what I'm about to say next.

I can't disclose its whereabouts.

You: (screams) TELL ME!

I'm sorry but I really can't. It wouldn't be all that mysterious if the whole college knew about it, would it?

Hey, c'mon! Don't hate me! The list is not over yet.

### 4. A Fireplace!



Miranda House hasn't been declared a heritage building for nothing. These obviously 'British' fireplaces ooze an old world charm. Don't you wish you could time travel to the colonial era now? Or not, maybe. I mean, Indians weren't exactly the ones using these fireplaces...

Anyhow, now out of use, this fireplace just lies in the DRC basking in former glory. Wondering why you never noticed them before? You would

## *THIS PLACE WE CALL HOME*

have if you'd ever taken your eyes off your smartphone. So much for technology doing us good!

### 5. The Site of Secrecy.



Rumour has it that a secret society is running within the walls of Miranda. Nobody knows who they are, how they select members or what exactly they do, except that they are conspiring to do something really big next semester. Something on the lines of a 'Dumbledore's Army'. And this is their secret meeting spot. Who knew Miranda had its own Room of Requirements!

The girl in the picture? I think she's the head.

Please try to douse your exorbitant curiosity with this information only because that is all that I could spy out from a distance. As to how I found this place or even where it is for that matter is not something you're getting out of me. Let's just say, I have my sources. And all

you need to know is that it is very much on-campus.

Now shh...you didn't hear it from me!

### 6. Bonus: Harry Potter Staircase!



I was feeling generous, so here's a bonus picture. Since Dumbledore's name featured on this list, it only made sense to end it with another Harry Potter reference. I don't expect you to 'not' know this place. In fact, I hope you DO know where this is because if you don't, you should probably stop calling yourself a Mirandian this instant. Located next to the DRC on the ground floor, my favourite staircase will waltz you up to the Heritage Hall on the first floor. If only it actually moved, what a Hogwarts it would be!

*Yusra Hasan*  
*B.A. (Hons) English, III yr.*

## A Date with a Writer

---

Ms. Ira Singh, a lecturer at Miranda House, Delhi University, is an exceptional writer as well. Over the years, she has reviewed a wide assortment of modern literature and has also written for various publications. Her first novel, *The Surveyor*, was published in September, 2014, by Picador India (Pan Macmillan). Through *The Surveyor*, Ms. Ira Singh introduces us to the entangled experiences of the post-independence period. Currently working on her second novel, Ms. Ira Singh sheds some light on the present scenario of Indian Literature and Publications.

Q: *The Surveyor* takes the reader on a journey which spans almost fifty years, unravelling elements of different familial relationships from the very birth of the nation. What prompted you to set the background against the tumultuous period following 1947? Given the extensive period that the novel covers, how rigorous was the procedure of your research?

A: The literature around Partition is profound and significant and I couldn't even imagine trying to add to that. I prefer to think of *The Surveyor* as a novel that explores history tangentially, thus removing this binary of family story/ historical background. My attempt was to look at the effects of historical events- like Partition, of course, but also 1984 and 1991.

But I also wanted to explore history in a slightly different way-- through cultural shifts (the history of popular music, for example) that date and situate this family in a specific context.

Having said that, of course, I read a great deal around the area, focusing on the mapping of India because the novel, as its title suggests, is also about surveying. The thing about 'research' is you end up junking a lot of it in a novel, or

you should, I think, as it often hampers the flow.

Q: The year of Independence was, in all its entirety, a watershed which significantly influenced the politics, economy, language, literature and society of India. What, according to you, is the general trend in post-Independence works of fiction and to what extent does *The Surveyor* conform or deflect from that trend?

A: It seems a piece of hubris to insert myself into a tradition, actually. As for post Independence, it is an enormous swathe of time and Indian writing in English has had many different practitioners during this period. Writers who continue to interest me in realist writing are Anita Desai and Rohinton Mistry; the early Ghosh, the later Amit Chaudhari. I find much to admire in Rushdie, particularly the short stories and essays.

Q: Given that the written word is capable of revealing a variety of emotions and experiences of the author, how much of your personal journey, would you say, has been incorporated into the narrative?

A: That's the question I was waiting for! My father worked in the Survey and my interest in it stems from that fact. My father's journey was from pre-partition Jhelum as well. Fiction is, or should be, imaginative terrain. It is possible to start with the facts of a life; what you do with those is what makes fiction. I certainly hope I've done that.

Q: What would you say are the challenges that an author faces, especially in India, from the time she/he completes the novel to its realization as a printed work, including the hours spent on editing, changing certain dimensions of the narrative and finding the right publisher?

A: First of all, the entire thing takes ages, particularly rewriting, editing and reworking a manuscript's structure till you are satisfied with it. Years go by, really. Then, of course, the publishing process is lengthy; the acceptance, (and some rejects, an absolute necessity for any writer!) incorporating some changes the publisher suggests, working on further edits and so on.

I tend not to send a manuscript to multiple publishers and prefer approaching them one at a time, an approach that adds time to an already lengthy process. I'm doing the same with the second, a collection of stories called Pilgrimage, as I did with the first.

Q: Looking back, had you the opportunity, would you alter any aspect of *The Surveyor*; any part that you feel deserved a different approach?

A: It was a first novel; by definition these are somewhat uneven. You have to learn to write fiction by writing- I can't put it more elegantly than that- so you are learning on the job, as it were.

I can't think of a particular aspect, though. There were certain things I set out to do and I was satisfied I had done those.

Some readers have professed unhappiness with the ending, but one of the things you realize when you are writing is that endings are difficult things to change. Nothing mystical about that, just that writing is a somewhat circular process and the end of your novel is, very often, written into the beginning.

Q: As a published author in India, how do you feel about the shifts in themes and approach to Indian fiction, from the likes of Vikram Seth and Amitav Ghosh to recent 'Popular Indian Fiction' including Chetan Bhagat? In the present scenario of the country, which author would you

mention as a promising writer, with potential to deliver more in the years to come?

A: I think Anjum Hassan, Jerry Pinto, Jeet Thayil- these are good writers.

I don't think there's a trajectory from Ghosh and Seth to Bhagat-- at least I hope not, for their sake! There's a lot of very good nonfiction from Indian writers based in the U.S- mostly literature on medicine. Siddhartha Mukherjee and Atul Gawande come to mind.

Q: Lastly, what would you include under your all-time favourite books, which uncover different insights and perspectives every time you read them?

A: Most of the books I re-read are the ones I teach. I love Anna Karenina and the Russian novel; I've read D.H. Lawrence's *Sons and Lovers* more times than I can count; the same with much of Woolf. Oh, and Naipaul's *A House for Mr. Biswas*. I never get tired of that wonderful book.

Outside teaching I read a great deal so I'm always rushing to the next, continually thinking I'm going to return to the last.

I don't have as many favorite books as I do writers: Javier Marias, John McGahern, Raymond Carver. I also read a lot of the Japanese- some of their crime writing is very good, as are, of course, the stalwarts, Mishima, Tanizaki, Soseki, Kawabata.

I've just discovered Han Kang. *The Vegetarian* is a brilliant book and I'm now reading her second translated novel, *Human Acts*.

***Ramyani Chakrabarti & Vidisha Ghosh  
B.A. (Hons) History, II yr.***

*INSTAGRAM FEATURE*

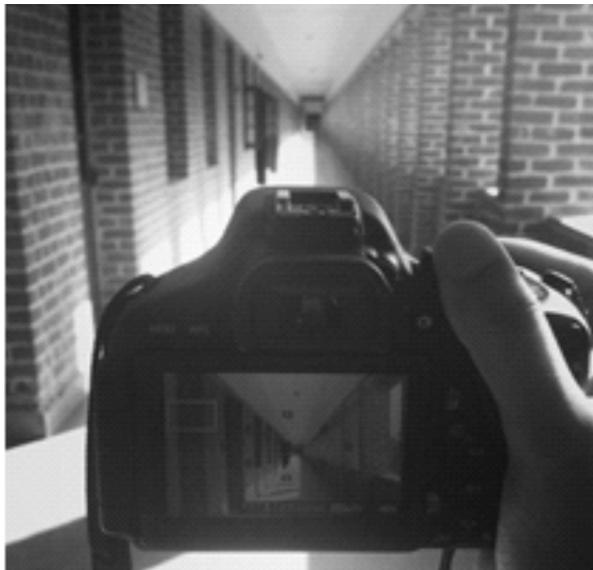
---



Nazar mein khwaabon ki bijliyan leke chal  
rahe ho, toh zinda ho tum...



It stands tall in a majestic trance with its arms  
spread out in prayer.



MemoryHoarder



Set wide the window, let me drink the day.



Unwrapping new layers of being.



Aru valley brought back childhood memories of Heidi. Could live there in the mountains with an old grandfather, a hay bed in the attic, and Peter with his herd of goats.



"Khud hi toh hai hum, kinare..."



"Vladimir: Say you are, even if it's not true.  
 Estragon: What am I to say?  
 Vladimir: Say, I am happy.  
 Estragon: I am happy.  
 Vladimir: So am I.  
 Estragon: So am I.  
 Vladimir: We are happy.  
 Estragon: We are happy. (Silence.) What do we do now, now that we are happy?"



The Grecian columns at Victoria Memorial stole my heart.

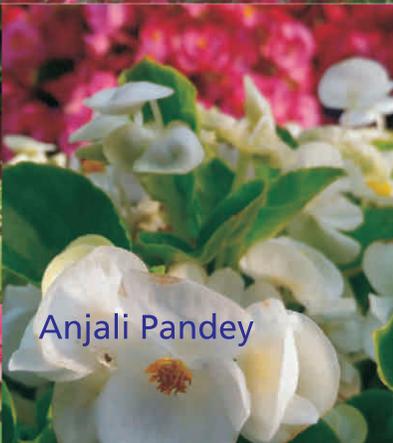
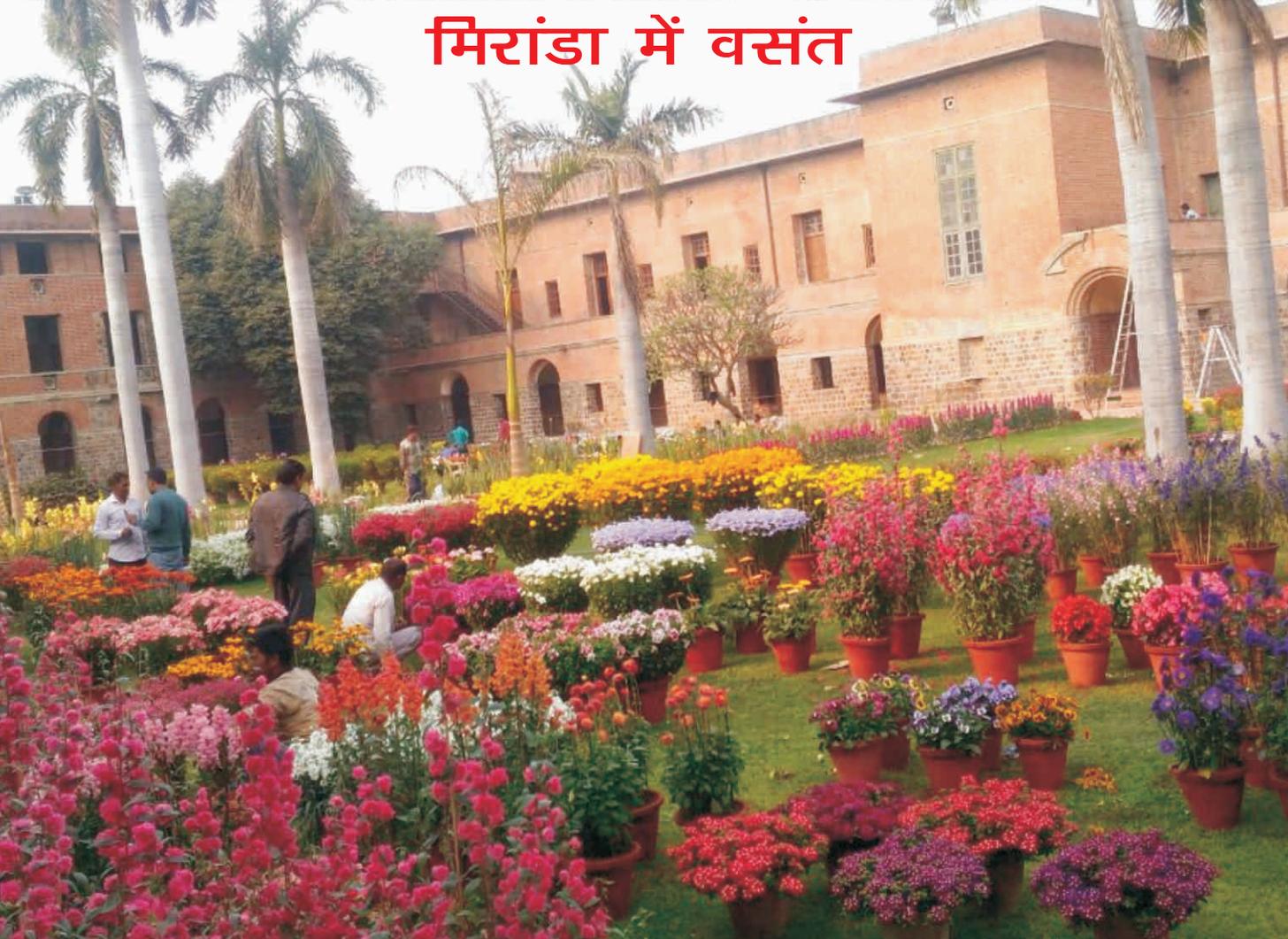
Thankfully, the subversive appropriation of this iconic edifice by its museum is enough to nurse any colonial hangover.

*Yusra Hasan  
 B.A. (Hons) English, III yr.*





## मिरांडा में वसंत



Anjali Pandey

